प्रयाग कुम्भ

उत्पत्ति तथा इतिहास – एक विश्लेषण

लेखकगण

डॉ. असीम श्रीवास्तव एवं डॉ. मंजुश्री श्रीवास्तव

इलाहाबाद

22 अगस्त, 2018

सम्पर्कसूत्र

दूरभाष (mobile) – (+91) 9654958819
ईमेल (email) - aseeem22@rediffmail.com

प्रयाग–कुम्भ : उत्पत्ति तथा इतिहास – एक विश्लेषण

''को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ, कलुषपुंज कुंजर मृगराऊ।''[1]

1. भारतवर्ष के धार्मिक स्थलों में प्रयाग का स्थान सर्वोपरि है। जहाँ अन्य तीर्थस्थल किसी एक नदी के तट पर स्थित हैं, यह दो महान् नदियों के पवित्र संगम पर स्थित है। काशी, मथुरा, अयोध्या, उज्जैन इत्यादि अन्य नगरियों में किसी एक देवविशेष की उपस्थिति मानी जाती है, जबकि प्रयाग में सभी देवताओं का सामान्य निवास माना गया है। स्नान, दान, वपन तो किसी भी तीर्थ में हो सकता है, किन्तु कल्पवास का विधान तो सिर्फ यहीं के लिए है। विभिन्न तीर्थों में मनुष्य अपने पाप धोने के लिए जाया करते हैं, लेकिन समस्त तीर्थ अपनी–अपनी शुद्धि के लिए प्रयाग में ही आते हैं। इन्हीं विशिष्टताओं के दृष्टिगत पुराणादि ग्रन्थों में प्रयाग को 'तीर्थराज' की पदवी से विभूषित किया गया है।

2. वर्तमान समय में प्रयाग (अब इलाहाबाद) कुम्भ मेले के आयोजन के कारण विश्व प्रसिद्ध है। जिस वर्ष माघ[2] मास में बृहस्पति ग्रह वृष (या मेष) राशि पर होता है उस वर्ष प्रयाग का माघमेला 'कुम्भपर्व' नाम से जाना जाता है। इस अवसर पर पूरे विश्व से लोग यहाँ आते हैं। वैसे तो कुम्भ मेला प्रयाग के अलावा हरिद्वार, उज्जैन तथा नासिक में भी होता है, लेकिन स्नानार्थियों की सर्वाधिक भीड़ प्रयाग में ही होती है, जो इसकी महत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। विश्वभर में किसी एक अवसर पर लोगों की सबसे विशाल भीड़ इकट्ठा होने का कीर्त्तिमान प्रयाग के 'कुम्भपर्व' का ही रहता है। 'कुम्भपर्व' प्रयाग में हर बारह वर्ष पर पड़ता है। पिछला कुम्भपर्व वर्ष 2013 ई. में सम्पन्न हुआ था। इसके अतिरिक्त कुम्भपर्व से छठवें वर्ष अपेक्षाकृत कुछ छोटा मेला होता है, जिसे 'अर्द्धकुम्भ' पर्व कहते हैं। आगामी वर्ष 2019 ई. में पड़ने वाला माघमेला 'अर्द्धकुम्भ पर्व' ही है। भारतवर्ष के समस्त धार्मिक पर्वों में कुम्भ मेला सर्वोपरि है। इतनी महिमा और महत्त्व के बावजूद इस पर्व के आरम्भ तथा प्रचलन के इतिहास के बारे में पर्याप्त प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह पर्व कब और कैसे शुरू हुआ? कैसे इस शुद्ध धार्मिक स्नानपर्व में सामाजिक और आर्थिक पहलू जुड़ने से यह 'मेला' बन गया? कब यह वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ? इसके नामकरण का क्या आधार था? अर्द्धकुम्भ क्या है और यह प्रयाग तथा हरिद्वार में ही क्यों होता है? – इत्यादि प्रश्नों के समाधान हेतु कोई निश्चायक प्रमाण नहीं मिलता।

3. बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, विशेषतः 1954 ई. के इलाहाबाद के कुम्भ मेले में हुई दुर्घटना के पश्चात् देश–विदेश के विद्वानों ने कुम्भपर्व की ऐतिहासिकता निर्धारित करने की ओर बड़ी रुचि दिखायी। इस विषय में धर्मगुरुओं और आमजन की प्रायः एक ही धारणा थी कि इस कुम्भपर्व का आयोजन प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक– इन चार जगहों पर अनादि काल से होता आ रहा है और श्रद्धालुजन तद्तद् अवसर पर इन तीर्थों में स्नान कर अक्षय पुण्य अर्जित करते हैं। धर्म सदा से ही श्रद्धा का विषय रहा है, जिसमें तर्क की कोई गुंजाइश नहीं होती। अतः कुम्भ जैसी धार्मिक परम्परा की प्राचीनता भी सर्वस्वीकार्य थी; इसके समर्थन में कोई तर्क देने अथवा साक्ष्य जुटाने की न तो कोई कोशिश कभी की गयी और न ही इसकी आवश्यकता समझी गयी।

4. वर्ष 1954 ई. में इलाहाबाद के कुम्भ मेले के दौरान हुई भयंकर दुर्घटना की जाँच हेतु उत्तरप्रदेश सरकार ने एक न्यायिक आयोग गठित किया था।[3] इस आयोग ने जाँच के क्रम में कुम्भपर्व के

---

[1] तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 105(1)।

[2] माघ परम्परागत भारतीय पंचांग में 11वाँ महीना है, जो सामान्यतः ग्रेगोरियन कैलेण्डर के जनवरी माह के मध्य से शुरू होकर फरवरी माह के मध्य तक चलता है।

[3] दिनांक 03.02.1954 को कुम्भ मेले के मौनी अमावस्या के दिन भगदड़ मच जाने से कई स्नानार्थियों की मृत्यु हो गयी थी। इस दुर्घटना की परिस्थितियों और कारणों की जाँच हेतु एक न्यायिक जाँच आयोग श्री कमलाकान्त वर्मा, अवकाशप्राप्त न्यायाधीश, की अध्यक्षता में फ़रवरी, 1954 ई. में गठित हुआ था। आयोग ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर, 1954, में सरकार को सौंपी, जिसमें की गयी संस्तुतियाँ भविष्य के मेलों की प्राशासनिक–व्यवस्था की आधारभित्ति बनीं।

आयोजन के पीछे धार्मिक मान्यता तथा इसकी ऐतिहासिकता को जानने का प्रयास किया। अनेक धर्माचार्यों, ज्योतिषियों तथा संस्कृतज्ञों से राय ली गयी, जिसका बड़ा ही आश्चर्यजनक परिणाम आया।

5. यद्यपि आयोग ने अपनी जाँच–रिपोर्ट में कुम्भपर्व के पीछे की मान्यता और उसकी ऐतिहासिकता पर कोई निष्कर्षात्मक टिप्पणी नहीं की और न ही यह उसकी जाँच का निर्दिष्ट बिन्दु ही था, फिर भी इसका उल्लेख इस रिपोर्ट में प्रमुखता से किया गया। आयोग की इस पहल का एक सकारात्मक परिणाम यह था कि देश–विदेश के अनेक विद्वानों तथा शोधकर्त्ताओं का ध्यान कुम्भपर्व की ऐतिहासिकता की ओर आकर्षित हुआ और फिर तो इस विषय पर गम्भीर शोध एवं लेखन का सिलसिला चल पड़ा। इन लेखों में प्रयाग में कुम्भपर्व की शुरुआत विषयक मुख्यतः दो प्रकार के दृष्टिकोण या मतवाद सामने आते हैं– श्रद्धामूलक परम्परागत दृष्टिकोण और लिखितसाक्ष्यापेक्षी आधुनिक मतवाद।

परम्परागत दृष्टिकोण

6. भारतीय जनमानस साधारणतः कुम्भपर्व की परम्परा को अति प्राचीन मानता है। कुम्भपर्व की उत्पत्ति के विषय में सर्वाधिक प्रचलित कथा, जो कि मामूली अन्तर के साथ बहुप्रचारित है, के अनुसार समुद्रमन्थन से प्राप्त अमृत कलश को धन्वन्तरि से छीनकर इन्द्रपुत्र जयन्त द्वारा आकाश–मार्ग से ले जाते समय अमृत की बूँदें छलक कर, पृथ्वी में चार स्थानों पर गिरकर, वहाँ की जलधारा में मिल गयीं। यह स्थान थे, नासिक में गोदावरी नदी, उज्जैन में क्षिप्रा नदी, हरिद्वार में गंगा नदी, और प्रयाग में गंगा तथा यमुना का संगमस्थल। उस अमृत–जल सम्मिश्रण से तत्तत् स्थानों पर उन नदियों की जलधारा की पवित्रता, अघमर्षणता और त्रिविधतापनिवारण क्षमता में अद्‌भुत चमत्कार आना स्वाभाविक है। उसी चमत्कार से फलित ऐहिक आमुष्मिक कल्याण प्राप्त करने की उत्कट लालसा में, जिस विशिष्ट खगोलीय स्थिति/ग्रह–योग में कुम्भस्थ अमृत छलक कर जलधारा से मिला था, उसी विशिष्ट ग्रहयोग के समुपस्थित होने पर, तद्तद् स्थान पर 'कुम्भयोग' मानकर स्नान–दान आदि करने की परम्परा चली आ रही है।[4]

7. इस मत में 'कुम्भ' पद का अर्थ 'कलश' माना गया है, जिसमें अमृत रखा गया था और इसलिए कुम्भपर्व परम्परा की प्राचीनता के पोषक विद्वान् अपने इस मत के समर्थन में वेद–पुराण आदि पुरातन ग्रन्थों के ऐसे अनेक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जिनमें प्रत्यक्षरूपेण 'कुम्भ' शब्द का उल्लेख किया गया है। इनमें प्रमुख उद्धरण निम्नलिखित हैं:–

(i) जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून्।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः।।[5]

(ii) पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा न सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन्।।[6]

---

[4] द्रष्टव्य –दिलीप रॉय और इन्दिरा देवी, 'कुम्भः इण्डियाज़ एजलेस फ़ेस्टिवल', (भारतीय विद्या भवनः 1955) पृष्ठ सं. 18।

[5] ऋग्वेद (10।89।7) के इस मन्त्र के द्रष्टा रेणु ऋषि हैं तथा इसके देवता 'इन्द्र' हैं। इस मन्त्र का अर्थ है कि 'जैसे फरसा वन (के वृक्षों) को काट गिराता है वैसे ही इन्द्र ने असुरराज वृत्र को मार डाला; उसकी नगरी को भेद दिया, (और पृथ्वी की) नदियों को वृष्टि के जल से भर दिया, बादलों को नये बने हुए घड़े की तरह तोड़ दिया और स्वयं संयुक्त होकर जल को हमारे अभिमुख कर दिया।' प्रसिद्ध टीकाकार सायण इस मन्त्र का अर्थ करते हैं –'इन्द्रः वृत्रम् असुरं जघान हतवान्। अपि च स्वधितिः परशुः वनेव वनानीव पुरः शत्रुनगरीः रुरोज रुजति भिनत्ति। शत्रुनगरीर्भित्त्वा च सिन्धून् नदीः अरदत् वृष्ट्युदकेनालिखत्। न इति संप्रत्यर्थे। किंच गिरिं मेघं नवं न नवमिव कुम्भं कलशं बिभेद इत् भिनत्त्येव। किंच इन्द्रः स्वयुग्भिः स्वयं युज्यमानैर्मरुद्‌भिः गा उदकानि आ अकृणुत अस्मदभिमुखं करोति।' पाश्चात्त्य विद्वान् राल्फ़ ग्रिफ़िथ अपनी पुस्तक 'द हिम्न्स ऑफ़ ऋग्वेद' (ई.जे. लाजारस ऐण्ड कम्पनी, वाराणसीः 1920) में इसका अनुवाद करते हैं:– "As an axe fells the tree so he slew Vritra, brake down the strongholds and dug out the rivers. He cleft the mountain like a new-made pitcher. Indra brought forth the kine with his Companions. "

[6] अथर्ववेद (19।53।3) के इस मन्त्र के द्रष्टा भृगु ऋषि हैं तथा इसके देवता 'काल' हैं। इस मन्त्र का अर्थ है–'(यह) सम्पूर्ण (ब्रह्माण्डरुपी) घट, काल में ही अवस्थित है, उस (काल) को निश्चय ही नाना रूपों में प्रकट होते हुए (को) (हम) देखते हैं।

(iii) कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्ने योन्यां गर्भो अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः।।[7]

(iv)चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि।[8]

(v) पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धा भेद उच्यते।
चतुस्थले च पतनात् सुधाकुम्भस्य भूतले।।
विष्णुद्वारे तीर्थराजेऽवन्त्यां गोदावरी तटे।
सुधाबिन्दुविनिक्षेपात् कुम्भपर्वेति विश्रुतम्।।[9]

परम्परावादी मानते हैं कि इन श्लोकों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अमृतकुम्भ के छलकने पर पृथ्वीतल में चार स्थानों–हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा गोदावरी तट अर्थात् नासिक में अमृतकण गिरने से कुम्भपर्व शुरू हुआ। साथ ही वह प्रयाग में होने वाले कुम्भपर्व की ग्रहस्थिति और महिमा के बारे में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं–

(vi) मकरे च दिवाकरे वृषगे च बृहस्पतौ
कुम्भयोगो भवेत् तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः।[10]

अर्थात् सूर्य के मकर राशि में और बृहस्पति के वृष राशि में होने पर प्रयाग में कुम्भयोग होता है।

(vii) अश्वमेधसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षप्रदक्षिणा पृथ्व्ययाः कुम्भस्नानेन तत्फलम्।।[11]

वह काल ही इन सब उत्पन्न/दृश्यमान जगत् को चारों ओर से व्याप्त करता है। उस को उत्कृष्ट आकाशवत् (निर्लिप्त) कहते हैं।' प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प्रो. विलियम डी. व्हिटनी ने 'अथर्ववेद संहिता' के स्वसंपादित संस्करण (हार्वर्ड ओरिएण्टल सीरीज़, हार्वर्ड विश्वविद्यालयः1905) में इसका अग्रलिखित अनुवाद किया है– "A full vessel is set upon time; we indeed see it, being now manifoldly it (is) in front of all these beings; it call they time in the highest firmament. "

[7] शुक्ल यजुर्वेद (19। 87) के इस मन्त्र के द्रष्टा शंख ऋषि हैं तथा इसके देवता 'पितर' हैं। इसका अर्थ प्रसिद्ध टीकाकारों, उव्वट तथा महीधर ने निम्नलिखित प्रकार से किया हैः–

(उव्वटः)– 'सुरासंधानकुम्भो वनिष्टुः जनिता च जनकश्च। शचीभिः स्वकीयैरेव कर्मभिः यस्मिन् कुम्भे अग्रे प्रथमं योन्यां गर्भः। अन्तर्मध्ये सुरालक्षण उषितः। किंच। प्लाशिर्व्यक्तः। स्पष्टः शतधारउत्सः कूपः बहुस्रोतत्वात् कूपः उक्तः। दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः।'

(महीधर)– 'कुम्भः सुराधान कुम्भो शचीभिः कर्मभिः कृत्वा वनिष्टुः स्थूलान्त्रं जनिता जनयति। यस्मिन् कुम्भे योन्यां कुम्भरूपे योनौ स्थाने अग्रे प्रथमम् अन्तर्मध्ये गर्भः। सुरारूप उषितः। शतधारउत्सः कूपतुल्यः कुम्भः व्यक्तः स्पष्टः प्लाशिः शिश्नः अभवत्। कुम्भी सुराधानी च पितृभ्यः स्वधां दुहे दुग्धे अन्नं पूरयति।'

राल्फ़ ग्रिफ़िथ अपनी पुस्तक 'द व्हाइट यजुर्वेद' (ई.जे. लाजारस ऐण्ड कम्पनी, वाराणसीः 1927) में इसका अनुवाद करते हैंः–"The pitcher was the father of the rectum by powers, the womb which first contained the infant. Plain was the hundred-streaming fount as penis; the jar poured forth libations to the Father."

[8] अथर्ववेद (4 ।34 ।7) का यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है – 'चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना, उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणी समन्ताः।' इस मन्त्र के द्रष्टा अथर्वा ऋषि हैं तथा इसके देवता 'ब्रह्मौदन' हैं। इस मन्त्र का अर्थ है– 'दूध, जल तथा दही से भरे हुए चार कलशों को (पूर्व–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण में) चार प्रकार से धारण करता हूँ। ये सब कलश तुम्हें इस लोक में और स्वर्गलोक में प्राप्त होते रहें। पुष्करिणी तुम्हें सब ओर से प्राप्त होवे।' प्रो. व्हिटनी इसका अर्थ करते हैं – 'Four vessels four fold, I give, filled with milk, with water, with curds, let all these streams come with the swelling honeydly in the havenly world.'

[9] इन श्लोकों का स्रोत अज्ञात है। 'महाकुम्भपर्व' (गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित) पुस्तिका में इन श्लोकों को स्कन्दपुराण का बताया गया है, किन्तु ये श्लोक वहाँ प्राप्त नहीं होते। ये श्लोक अर्वाचीन ही प्रतीत होते हैं।

[10] इस श्लोक का एक पाठान्तर भी मिलता है, जो मेषस्थ बृहस्पति में कुम्भयोग मानने वाले उद्धृत करते हैंः– 'मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ, कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे चातिदुर्लभः।' इस उद्धरण का भी मूल स्रोत नहीं मिलता और यह श्लोक भी नया ही लगता है। कुम्भयोग के लिए वर्षविशेष की माघी अमावस्या को बृहस्पति और सूर्य की स्थिति देखी जाती है, पूरे वर्ष की नहीं। जब कभी, अपने बारह वर्षीय चक्र में, बृहस्पति किसी भी माघी अमावस्या पर वृषराशि में नहीं रहता, तो ऐसी परिस्थिति में जिस माघी अमावस्या पर मेषस्थ बृहस्पति हो, उसी वर्ष कुम्भ योग मान लिया जाता है। वर्ष 1977 ई. का कुम्भ मेषस्थ बृहस्पति में ही हुआ था।

[11] 'परमार्थ' पत्रिका (कुम्भ विशेषांक, जनवरी–फरवरी 1989, पृष्ठ सं. 28) में यह श्लोक 'विष्णुपुराण' से उद्धृत बताया गया है। किन्तु यह श्लोक न तो विष्णुपुराण में मिलता है और न ही किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थ में। यह श्लोक भी अर्वाचीन ही है।

अर्थात् कुम्भस्नान करने पर मनुष्य को वही फल मिलता है जो हज़ारों अश्वमेध यज्ञ, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ और पृथ्वी की एक लाख बार परिक्रमा करने से मिलता है।

(viii) श्राद्धकुम्भे विमुंचति ज्ञेयं पापनिषूदनम्
श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जप्य होम तपांसि च।।[12]

8. उपर्युक्त वेद पुराणोक्त वचनों के अतिरिक्त कुम्भपर्व की प्राचीनता के प्रबल प्रमाण के रूप में चीनी यात्री ह्वेनसांग की, सातवीं शताब्दी में, प्रयाग यात्रा उल्लेखनीय है, जहाँ उसने संगम तट पर राजा हर्ष को, एक बड़े आयोजन में, मुक्त–हस्त से दान करते हुए देखा था। ह्वेनसांग लिखता है कि राजा हर्षवर्द्धन अपने पूर्वजों के अनुसरण में हर छठवें वर्ष प्रयाग आकर, अपनी विगत पाँच वर्षों में अर्जित सम्पत्ति को एक भव्य धार्मिक आयोजन के दौरान दान कर देता था। यह आयोजन, संगम तट पर अनेक दिन चलता था। इस आयोजन का समीकरण प्रायः सभी विद्वान् कुम्भपर्व से करते हैं।

9. इसके अतिरिक्त प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार सिखों के प्रथम गुरु नानक देव,[13] गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु, भक्त शिरोमणि तुलसीदास जैसे धार्मिक पुरुषों ने मध्यकाल में कुम्भमेलों के दौरान प्रयाग आकर यहाँ स्नान कर पुण्यलाभ किया।

10. यहाँ यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि प्रायः सभी परम्परावादी विद्वान् पुराणादि ग्रन्थों से, प्रयाग में, केवल माघस्नान या मकरसंक्रान्ति स्नान सम्बन्धी उद्धरण ही ढूँढ कर दे पाये, कुम्भपर्व के आरम्भ, ग्रहयोग अथवा विशिष्टता सम्बन्धी उद्धरण नहीं; जिनके अभाव में वो लोग यह भी विनिश्चित नहीं कर सके कि 'कुम्भ' पद किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुछ लोगों ने समुद्र–मन्थन से प्राप्त अमृतकलश की कथा में इसका मूल बताया, तो कुछ ने कलश से अमृत छलक कर गिरने के समय सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति ग्रहों की विशेष युति को भी पर्व का एक कारण बताया, किन्तु इस मान्यता का प्रामाणिक स्रोत या साक्ष्य कोई न दे सका। जाँच–आयोग ने अपनी रिपोर्ट में ठीक ही लिखा था :–

> "it appears that for a considerable length of time, matters stood as above. Exactly when and how the idea, that the bathing festival during the one month described above should at intervals of twelve years, be regarded as a more important occasion and should be called the"कुम्भस्नान", was developed, is not quite clear. There seems to be no doubt, however, that it is a later development."[14]

आधुनिक विद्वानों का मत

11. पिछले 60 वर्षों में अनेक भारतीय और विदेशी शोधकर्ता/विद्वानों ने कुम्भपर्व की उत्पत्ति तथा इतिहास के सम्बन्ध में गवेषणापूर्ण लेख लिखे हैं। इन सभी विद्वानों का, एकाध अपवाद छोड़कर, प्रायः यही निष्कर्ष रहा है कि कुम्भपर्व को अनादि मानने का कोई असन्दिग्ध साक्ष्य नहीं है। कुम्भपर्व को समुद्रमन्थन की पौराणिक कथा से जोड़ने के पीछे एक ही कारण था, इसे शास्त्रीय मान्यता दिलाकर सर्वग्राह्य बनाना। श्री आर.बी. भट्टाचार्य,[15] डॉ. डी.पी. दुबे,[16] प्रो. कामा मैक्लीन[17]

---

[12] यह श्लोक वायुपुराण (अध्याय 77 श्लोक 47) के 'श्राद्ध प्रकरण' में पढ़ा गया है, जहाँ पितरों के श्राद्ध हेतु उपयुक्त विभिन्न तीर्थों का वर्णन किया गया है। इसका अर्थ है कि कुम्भ नामक तीर्थ को पापविनाशक जानना चाहिए, जहाँ श्राद्ध का अनुष्ठान होता है। वहाँ किये गये श्राद्ध, जप, तपादि का अक्षय फल मिलता है।

[13] राजा सर दलजीत सिंह, 'Guru Nanak' (यूनिटी पब्लिशर्स, लाहौरः 1943) पृष्ठ सं. 81।

[14] "Report of the Committee appointed by the Uttar Pradesh Government to enquire into the mishap which occurred in the Kumbha Mela at Prayag on the 3rd February, 1954", (गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबादः1954), पृष्ठ सं. 20।

[15] "The Kumbhparva", Hindutva 7(9-10), Pg 1-9.

[16] "Kumbh Mela: Origin and Historicity of India's Greatest Pilgrimage Fair", नेशनल ज्योग्राफ़िक जर्नल ऑफ़ इण्डिया 334(4), पृष्ठ सं. 469–492।

[17] "Pilgrimage and Power: The Kumbh Mela In Allahabad, 1765-1954", (ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेसः2008)।

इत्यादि विद्वानों ने, जाँच–आयोग की तरह, कुम्भोत्पत्ति की कथा को एक नयी पहल ही माना है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि अभी तक उपलब्ध भारतीय शास्त्रों में कहीं भी कुम्भपर्व की चर्चा नहीं है, और न ही कहीं प्रयाग के माघमेला को 'कुम्भ' संज्ञा दी गयी है।[18]

12. कुम्भपर्व की उत्पत्ति तथा इतिहास की आधुनिक मान्यता का सविस्तार विवरण हमें मुख्यतः डॉ. डी. पी. दुबे तथा प्रो. कामा मैक्लीन की शोधपूर्ण पुस्तकों में मिलता है। इनमें परवर्ती लेखन प्रो. कामा मैक्लीन का है, जिन्होंने अपने शोधग्रन्थ में उपर्युक्त सभी विद्वानों के मतों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। प्रति वर्ष माघ मास में होने वाले मेले से इतर, किसी 6 या 12 वर्ष के अन्तराल में होने वाले कुम्भादि मेले के प्रत्यक्ष उल्लेख का अभिलेखीय साक्ष्य ढूँढ़ने के क्रम में प्रोफ़ेसर कामा मैक्लीन ने अपने विद्वतापूर्ण शोधपत्र 'दि मॉडर्न बिगनिंग ऑफ़ दि एंशियेण्ट कुम्भ मेला' (The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela)[19] में लिखा है कि इलाहाबाद के मेले को 'कुम्भ' नाम से अभिहित किये जाने का दृष्टान्त, उपलब्ध साक्ष्यों में, सर्वप्रथम तीर्थयात्रा और सफाई–व्यवस्था से सम्बन्धित, वर्ष 1868 ई. की एक प्राशासनिक रिपोर्ट में मिलता है, जहाँ इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट श्री जे.सी.एच. रिकेट्स ने (आगामी) जनवरी, 1870 ई. में होने वाले कुम्भ मेले में सम्भावित भारी भीड़ के दृष्टिगत संक्रामक रोग फैलने की आशंका जतायी थी। रिकेट्स अपनी रिपोर्ट में चार वर्ष पूर्व, अर्थात् 1864 ई. में, हुए 'अर्द्धकुम्भ' मेले की भीड़ का भी उल्लेख करते हैं, जिसको उन्होंने स्वयं देखा था। इसके अतिरिक्त, वर्ष 1870 ई. के माघमेला पर अपनी रिपोर्ट में इलाहाबाद के तात्कालिक कमिश्नर श्री जे.सी. राबर्ट्स ने लिखा था कि उस वर्ष कुम्भ होने के कारण भारी भीड़ उमड़ी, फिर भी (मेला) निर्विघ्न सम्पन्न हो गया।

13. प्रो. मैक्लीन का मानना है कि इलाहाबाद में पहले केवल वार्षिक माघमेला ही हुआ करता था और 1860 ई. के दशक में स्थानीय प्रागवाल पुरोहितों ने ब्रिटिश प्रशासन की सहमति से इसे हरिद्वार के बारह वर्ष में पड़ने वाले 'कुम्भ' मेले की तर्ज़ पर, 'कुम्भ मेले' के रुप में प्रचारित कर दिया।[20] इस प्रकार 1864 ई. का पर्व अर्द्धकुम्भ बना और 1870 ई. का माघमेला प्रथम कुम्भ मेला हुआ। अपने उपर्युक्त शोधपत्र में प्रो. मैक्लीन ने इस निष्कर्ष को पुष्ट करने के लिए मुख्यतः निम्नलिखित तर्क दिये हैं :–

    - वर्ष 1868 ई. से पहले के किसी भी सरकारी दस्तावेज में इलाहाबाद में कुम्भ अथवा षाड्/द्वादश वार्षिक मेला होने का उल्लेख उन्हें नहीं मिला, जबकि हरिद्वार में हुए 1820 ई. तथा 1832 ई. के कुम्भ मेले का नाम से उल्लेख मिलता है।
    - वाल्टर हैमिल्टन के वर्ष 1828 ई. में प्रकाशित 'ईस्ट इण्डिया गजेटियर' और एडवर्ड थॉर्नटन के वर्ष 1854 ई. में प्रकाशित 'ए गजेटियर ऑफ द टेरीटरीज़ अण्डर द गवर्नमेण्ट ऑफ़ द ईस्ट इण्डिया कम्पनी' में हरिद्वार में बारह वर्ष के अन्तराल पर होने वाले विशिष्ट मेले का तो उल्लेख किया गया है, किन्तु इलाहाबाद के सन्दर्भ में मात्र वार्षिक माघ मेले का ही उल्लेख किया गया है, कुम्भादि का बिल्कुल नहीं।
    - वर्ष 1868 ई. से पूर्व, इलाहाबाद में कार्य कर चुके विभिन्न चर्चों से सम्बद्ध मिशनरीज़ ने भी माघमेला सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट अथवा संस्मरण में बारम्बार वार्षिक मेले का उल्लेख ही किया है, किसी 'कुम्भ' नामक मेले का नहीं।
    - वर्ष 1870 ई. के पूर्व इलाहाबाद में रहे अथवा माघमेला के दौरान यहाँ से गुज़रने वाले किसी यूरोपीय यात्री ने भी कुम्भ या एक वर्ष से अधिक के अन्तराल पर होने वाले किसी

---

[18] महामहोपाध्याय उमेश मिश्र, 'तीर्थराज प्रयाग और कुम्भपर्व', 'परमार्थ' पत्रिका, कुम्भ विशेषांक, पृष्ठ सं. 80।

[19] यह लेख 'द जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़ 62', नं. 03 (अगस्त 2003) के पृष्ठ सं. 873 से 905 में प्रकाशित हुआ था।

[20] "the Kumbh Mela was applied to Allahabad's extant Magh Mela in the 1860s by Pragwals of Prayag working upon and within the limits imposed by the colonial state and its discourse. This process was inadvertently aided by the British, and the resulting mela was affirmed by sadhus and pilgrims."- कामा मैक्लीन, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. सं. 3।

पर्व का उल्लेख नहीं किया है। आयरलैण्ड निवासी फ़ैनी पार्क्स, वर्ष 1826 ई. से 1836 ई. तक और फिर वर्ष 1844 ई. में इलाहाबाद में ही रहीं थीं। कुछ समय वह इलाहाबाद के किले में भी रही थीं। उन्होंने अपने संस्मरण[21] में बहुत विस्तार से इलाहाबाद के तात्कालिक जन–जीवन, कला–संस्कृति इत्यादि के बारे में लिखा है। उन्होंने संगम/गंगा तट पर होने वाले वार्षिक 'बड़ा' मेला का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है, लेकिन कहीं भी कुम्भपर्व या विशिष्ट स्नान का उल्लेख नहीं किया है।

- हिन्दुओं द्वारा लिखित ग्रन्थों, तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' (16वीं सदी), सुजानराय रचित 'खुलासात–अल्–तवारीख' (1695 ई.), राय चतरमन कायस्थ रचित 'चहार गुलशन' (1759 ई), बहादुरसिंह भटनागर कृत 'यादगारे–बहादुरी' (1833 ई.), भोलानाथ चन्दर की 'ट्रेवेल्स ऑफ़ ए हिन्दू' (1869 ई.), में भी प्रयाग के माघस्नान या वार्षिक मेले का विवरण तो मिलता है, किन्तु कुम्भ अथवा छह या बारह वर्ष पर होने वाले पर्व का कोई संकेत नहीं मिलता। जबकि हिन्दू संस्कृति से भलीभाँति परिचित होने के कारण ये लेखक, यदि ऐसा मेला उनके समय में प्रचलित होता तो, उसका उल्लेख ज़रूर करते।
- प्रो. मैक्लीन सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा अपने यात्रा–विवरण में वर्णित, इलाहाबाद के तट पर होने वाले दान पर्व को कुम्भ मेले से जोड़े जाने पर प्रबल आपत्ति करती हैं। उनके मत में ह्वेनसांग वर्णित पर्व हर पाँच साल पर होता था और यह एक दानपर्व था, न कि स्नान पर्व। यह राजा हर्ष द्वारा आयोजित किया जाता था, साधु–सन्तों द्वारा नहीं। सबसे बड़ी बात, यह एक बौद्ध उत्सव था, जिसमें बुद्ध की मूर्ति रखी जाती थी और बौद्ध भिक्षुओं को दान में ब्राह्मणों पर वरीयता दी जाती थी। ह्वेनसांग ने अपने विवरण में इस पर्व को कहीं भी 'कुम्भ' या समतुल्य शब्द से अभिहित नहीं किया है।

इस प्रकार आधुनिक मत प्रयाग के 'कुम्भपर्व' को एक ऐसी अर्वाचीन प्रथा मानता है, जो सम्भवतः हरिद्वार के कुम्भपर्व के अनुकरण में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ की गयी थी। इस मत के समर्थक अमृतकलश की कथा को प्रामाणिक नहीं मानते हैं और इसीलिए 'कुम्भ' शब्द से 'कुम्भराशि' का ग्रहण करते हैं, जिसमें बृहस्पति ग्रह के संचरण पर हरिद्वार का कुम्भ मेला होता है।

अन्य मत

14. कुछ विचारक कुम्भपर्व को दशनामी संन्यासियों[22] के अखाड़ों से जोड़ते हुए, इसे प्रारम्भ करने का श्रेय आदि शंकराचार्य[23] को अथवा मधुसूदन सरस्वती को देते हैं। हालाँकि इस मत के पक्ष में कोई लिखित साक्ष्य, सन्दिग्ध अथवा असन्दिग्ध, नहीं है।

15. आदि शंकराचार्य का समय अधिकांश विद्वानों द्वारा 788 ई. से 820 ई. माना जाता है। कहा जाता है कि चार मठों की स्थापना के साथ–साथ शंकराचार्य ने चार स्थानों पर दशनामी संन्यासियों के

---

[21] फ़ैनी पार्क्स के संस्मरण दो भागों में "The Wanderings of A Pilgrim in Search of the Picturesque During Four-and-Twenty Years in the East" नाम से सर्वप्रथम 1850 ई. में छपे थे, जिसके प्रकाशक 'पेलहम रिचर्डसन, लन्दन' थे। फ़ैनी पार्क्स के पति लम्बे समय तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इलाहाबाद स्थित कस्टम कार्यालय में तैनात रहे थे, और फ़ैनी भी उनके साथ ही इलाहाबाद आयी थी। इलाहाबाद के माघमेले का विस्तृत विवरण इस संस्मरण के प्रथम भाग के तेईसवें अध्याय (पृष्ठ संख्या 253–260) में मिलता है।

[22] आदि शंकराचार्य ने अद्वैतवादी शैव संन्यासियों को संगठित करते हुए दस शाखाओं अथवा नामों (surnames) – पुरी, भारती, सरस्वती, वन, अरण्य, गिरि, पर्वत, सागर, तीर्थ तथा आश्रम– की व्यवस्था की थी और उन्हें स्वस्थापित चार मठों से सम्बद्ध कर दिया था। संन्यास आश्रम में दीक्षित होने पर प्रत्येक नवसंन्यासी को एक नया नाम प्रदान किया जाता है जिसके अन्त में उक्त दस नामों में से एक नाम, जो उसके दीक्षागुरु की शाखा का होता है, जोड़ा जाता है। इन दस नामों की परम्परा से जुड़े संन्यासी ही 'दशनामी' कहलाते हैं।

[23] "According to tradition, the Kumbha Mela was organized by the great philospher Shankaracharya to promote regular gathrings of learned and holy men, as a means to strength, sustain and spread Hindu religious belief"- James G. Lochtefeld, 'The Encylopedia of Hinduism', Pg 379, Entry "Kumbha Mela".

अखाड़ों की नींव डाली और उन्हें चार पवित्र धार्मिक स्थलों–प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन तथा नासिक, जहाँ पहले से ही भिन्न–भिन्न मुहूर्तों में स्नानदान करने की पुराणप्रोक्त परम्परा थी, पर अनुयायियों समेत विशिष्ट अवसरों पर प्रवास कर स्नानादि करने की अनुज्ञा दी।[24] अखाड़ों द्वारा यह नियतावधिक प्रवास तथा स्नानादि का पर्व ही परवर्ती काल में कुम्भपर्व के रूप में प्रसिद्ध हुआ।[25] कुछ लोगों का मत है कि प्रयाग का प्राचीन मेला बौद्धकाल में 'महादानपर्व' के रूप में आयोजित होता था, जिसे शंकराचार्य ने व्यवस्थित कर वर्तमान कुम्भपर्व के रूप में परिवर्तित कर दिया। उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य ने उनके निर्देशानुसार, जनसाधारण से सम्पर्क करने तथा उन्हें धर्माचरण के नियमों से अवगत कराने के लिए प्रत्येक बारहवें वर्ष कुम्भपर्व में दशनामी संन्यासियों का भाग लेना आवश्यक कर दिया।[26]

16. अन्य कुछ विचारक मानते हैं कि मधुसूदन सरस्वती (1525–1642 ई.) ने मुगल शासकों द्वारा हिन्दू प्रजा पर अत्याचार और हिन्दू देवालयों को तोड़ने से खिन्न होकर संन्यासियों को शास्त्र के साथ शस्त्र की शिक्षा दिलवाकर सर्वप्रथम 'अखाड़ों' के रूप में संगठित किया था।[27] पुराणप्रोक्त उपर्युक्त चार प्रमुख धार्मिक स्थलों पर विशिष्ट स्नान के अवसर पर स्नानार्थियों की सुरक्षा हेतु इन संन्यासियों को नियतावधि के लिए तद्तद् स्थान पर नियुक्त किया जाता था, जहाँ ये अपनी छावनी बनाकर अस्थायी रूप से रहते थे। उस समय इनके लिए एक (तीर्थ) स्थान से दूसरे (तीर्थ) स्थान के लिए आने–जाने में बहुत समय लग जाता था, अतः धीरे–धीरे, इनकी छावनी प्रत्येक स्थल में एक नियमित अन्तराल में ही दुबारा आ पाती थी, जो (अन्तराल) मुगल साम्राज्य के कमजोर होने के साथ बढ़ता गया और छह अथवा बारह वर्ष पर स्थिर हो गया। 'अखाड़ों की छावनी लगना' और 'कुम्भपर्व' एक दूसरे के पर्याय हैं। सम्भवतः यह मत उन विचारकों द्वारा प्रचलित किया गया था, जो कुम्भ परम्परा को दशनामी सम्प्रदाय के अखाड़ों से जुड़ा मानते हैं और उन्हें 17वीं शताब्दी, अर्थात् मधुसूदन सरस्वती की मृत्यु के पूर्व कुम्भपर्व का कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिल पाया।[28]

विभिन्न मतों की समीक्षा

17. परम्परागत दृष्टिकोण का स्पष्ट मत है कि कुम्भपर्व में 'कुम्भ' पद का अर्थ[29] कलश ही है, राशिविशेष नहीं। उनकी दृष्टि में यह महज एक संयोग है कि हरिद्वार में यह पर्व तब मनाया जाता है जब बृहस्पति ग्रह कुम्भ राशि पर होता है। 'कुम्भ' का 'कलश' अर्थ लेने पर अमृतकलश की कथा से प्रयागादि चारों स्थानों का सम्बन्ध होने के कारण, चारों स्थानों में 'कुम्भपर्व' नाम सार्थक हो सकता है। लेकिन इसका अर्थ राशिविशेष लेने पर इस पर्व का नाम केवल हरिद्वार में ही

---

[24] कात्यायन रवीन्द्र चौबे, 'पावन पर्व कुम्भ', परमार्थ पत्रिका, कुम्भ विशेषांक, जनवरी–फरवरी 1989, पृष्ठ सं. 102–113।

[25] "In the eigth century, Shankara, a prominent Indian saint, popularized the Kumbh Mela among the common people, and soon the attendance began to grow to enormous proportions. Shankar placed special importance to the opportunity of associating with saintly persons while at Kumbh Mela. Both hearing from sadhus and sacred bathing are still the two main focus at Kumbh Mela."- Jack Hebner and David Osborn, 'Kumbh Mela: The World's Most Massive Act of Faith', www.archaeologyonline.net/artifacts/kumbh-mela,

[26] त्रिनाथ मिश्र, 'कुम्भगाथा', (अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989) पृष्ठ सं. 17।

[27] ''तत्पश्चात् मधुसूदन सरस्वती के समर्थन से नागा संन्यासियों को अस्त्र–शस्त्र से सज्जित किया गया। व्यवहार में निपुण होने पर भी मुसलमानी शासन में वे उनका प्रयोग करने से डरते थे। इस बार मधुसूदन सरस्वती की कृपा से उन्हें सुविधा मिली। .... इसी प्रवीण वेदान्तिक के नेतृत्व में संन्यासीदल आत्मरक्षा में और अन्याय के प्रतिरोध में तत्पर हो उठा।'' – प्रमथानाथ भट्टाचार्य, 'भारत के महान साधक', भाग–2 (हिन्दी अनुवाद), नवभारत प्रकाशन, अक्टूबर 1982, पृष्ठ सं. 121।

[28] अब तक प्रकाश में आया 'कुम्भस्नान' का सबसे पुराना लिखित साक्ष्य खत्री सुजान राय द्वारा 1695 ई. में रचित ग्रन्थ 'खुलासात–अल तवारीख' में मिलता है। इसमें हरिद्वार के प्रसंग में लिखा है कि हरिद्वार गंगा के तट पर बसे तीर्थस्थलों में पवित्रतम है। प्रति वर्ष बैसाखी के पर्व पर, जब सूर्य मेष राशि में प्रविष्ट होता है, लोग हर कोने से यहाँ आते हैं, विशेषकर उस वर्ष जब बृहस्पति ग्रह कुम्भ राशि में प्रवेश करता है। यह 12 वर्ष के अन्तराल पर होता है और तब भारी भीड़ आती है। द्रष्टव्य – 'खुलासात–अत्–तवारीख़' (मुहम्मद ज़फ़र हसन द्वारा सम्पादित संस्करण, दिल्लीः1918), पृष्ठ सं. 23।

[29] 'कुम्भो राश्यन्तरे हस्तिमूर्धांशे राक्षसान्तरे कार्मुके वारनार्यां च घटे।' (मेदिनीकोष, 106/2,3) अर्थात् कुम्भ शब्द राशिविशेष, हाथी के मस्तक का मांसपिण्ड, राक्षसविशेष, धनुष, वेश्यापति तथा कलश अर्थों में प्रयुक्त होता है।

सार्थक हो सकता है, जहाँ कुम्भस्थ बृहस्पति के दौरान यह मेला होता है; शेष तीनों स्थानों के मेलों के 'कुम्भ' नामकरण का राशिविशेष से कोई सम्बन्ध नहीं दिखता। यद्यपि परम्परावादियों का ऐसा मानना आपाततः ठीक प्रतीत होता है तथापि बुद्धिपूर्वक विचार करने पर, जैसा कि हम आगे देखेंगे, कुम्भपर्व के सन्दर्भ में 'कुम्भ' शब्द का कलश अर्थ लिया जाना उचित नहीं है।

18. परम्परागत मत के समर्थकों द्वारा उद्धृत पूर्वोक्त वेदमन्त्रों में यद्यपि 'कुम्भ' शब्द का प्रयोग हुआ है और उसका अभिधार्थ 'कलश' ही है, किन्तु इसका अर्थ 'कुम्भपर्व' किसी भी टीकाकार ने नहीं किया है। 'चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि' इस मन्त्रांश की शेष पंक्ति है– 'क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना' अर्थात् दूध, जल तथा दही से भरे हुए चार कलशों को (घर या यज्ञवेदी के चारों कोनों में रखकर) चार प्रकार से देता/धारण करता हूँ। यहाँ प्रकरण प्राप्त 'कलश' अर्थ छोड़कर 'कुम्भ' संज्ञा मानकर उसका 'कुम्भपर्व' अर्थ करना और 'चतुर्धा' का आशय हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक– यह चार स्थान करना निस्सन्देह कल्पनाशीलता की पराकाष्ठा है।

19. 'पूर्णः कुम्भः' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र का तो कुम्भपर्व से संगति बैठाने के क्रम में एक बेहद ही हास्यास्पद अर्थ लगाया गया है कि, *'हे सन्तगण! पूर्णकुम्भ बारह वर्षों के बाद आया करता है, जिसे हम अनेक बार प्रयागादि तीर्थों में देखा करते हैं। कुम्भ उस समय को कहते हैं जो महान् आकाश में ग्रह–राशि आदि के योग से होता है।'*[30] इसी तरह से ऋग्वेद और यजुर्वेद के पूर्वोक्त उदाहरणों में भी प्रयुक्त 'कुम्भ' शब्द का 'कुम्भपर्व' ऐसा अर्थ किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन वैदिक टीकाकार अथवा वेदविद् द्वारा समर्थित नहीं है।[31]

20. परम्परागत मत के समर्थक, उपर्युक्त 6, 7, तथा 8 वें क्रम पर उद्धृत जिन श्लोकों को पुराण से लिए गये बताते हैं, वो श्लोक तो पुराणों के किसी भी प्रामाणिक अथवा प्रचलित संस्करणों में पाये ही नहीं जाते। वस्तुतः ये श्लोक किसी भी प्राचीन अथवा मध्यकालिक पुस्तक में मूल अथवा उद्धरण के रूप में उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी आधुनिक विद्वान् ने इन श्लोकों की रचना, वर्तमान कुम्भपर्व के प्रचलन को देखकर ही बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की है। यदि यह श्लोक मध्यकाल में अस्तित्व अथवा प्रचलन में होते तो अवश्य ही, वाचस्पतिमिश्रकृत 'तीर्थचिन्तामणि' (16वीं शताब्दी), नारायणभट्टविरचित 'त्रिस्थलीसेतु' (16वीं शताब्दी), भट्टोजिदीक्षितकृत 'त्रिस्थलीसेतु' (17वीं शताब्दी), नागेशभट्टकृत 'तीर्थेन्दुशेखर' (18वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) इत्यादि ग्रन्थों में, जहाँ प्रयाग और गंगा का माहात्म्य विस्तरेण वर्णित है, उद्धृत होते।

21. 'पृथिव्यां कुम्भयोगस्य' इत्यादि श्लोक को गीताप्रेस ने अपनी 'महाकुम्भपर्व' नामक पुस्तिका में स्कन्दपुराण से उद्धृत बताया है, लेकिन स्वयं गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित स्कन्दपुराण के संस्करणों में ये श्लोक नहीं पाया जाता। इसी तरह से कुम्भपर्व की उत्पत्ति के विषय में समुद्रमन्थन में अमृतकलश निकलने, इन्द्रपुत्र जयन्त द्वारा उसे लेकर भागने और इस दौरान भूलोक में चार जगहों– प्रयाग, हरिद्वार, नासिक तथा उज्जैन– में अमृत छलककर गिरने की कथा भी किसी प्राचीन अथवा मध्यकालिक ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती। यद्यपि इसे पुराण से जोड़ने की कोशिश की जाती है, किन्तु यह किसी भी पुराण में उपलब्ध नहीं होती। किं बहुना, यह कथा पुराणों में उपलब्ध कथा के सर्वथा विपरीत है, जहाँ समुद्रमन्थन में धन्वन्तरि एक कमण्डल[32] में अमृत लेकर निकलते हैं और फिर मोहिनी वेषधारी भगवान् विष्णु उस अमृत को देवताओं को पिलाते हैं। इसी क्रम में असुर राहु भी अमृत पी लेता है और सूर्य तथा चन्द्र की शिकायत पर भगवान् विष्णु सुदर्शन चक्र से राहु का सिर काट देते हैं। इसके बाद देवताओं और असुरों में भयंकर युद्ध छिड़ जाता है, जिसमें

---

[30] पूर्वोक्त 'महाकुम्भपर्व' पुस्तिका, पृष्ठ सं. 2–3।

[31] इस प्रकार के मनमाने अर्थ संस्कृत का ज्ञान न रखने वाले अथवा अल्पज्ञान रखने वालों के लिए घातक है, क्योंकि वह मन्त्रों का अर्थ समझने के लिए प्रायः प्रचलित पुस्तकों का ही सहारा लेते हैं और उसमें दिये अर्थ को ही सही मान लेते हैं। यह कुम्भ की उत्पत्तिविषयक नवीन कथाओं के प्रचलन का बहुत बड़ा कारण है।

[32] 'धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत। श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति।' मत्स्यपुराण, अध्याय 251, श्लोक 5–6।

अन्ततः देवता विजयी होते हैं। लेकिन इस पूरे घटनाक्रम के दौरान अमृतकमण्डल मोहिनी वेषधारी भगवान् विष्णु के पास ही रहता है। पुराण कथा का यह कमण्डल किस प्रकार कलश अथवा कुम्भ में परिवर्तित हो गया, और इन्द्रपुत्र जयन्त को वहाँ पहुँच कर कब इसे छीनने का अवसर मिला – इस सम्बन्ध में परम्परागत मत के समर्थक विद्वान् कुछ प्रकाश नहीं डालते।

22. परम्परावादियों में इस बात को लेकर भी मतैक्य नहीं है कि इस मत में प्रयाग में अमृत छलकने की जिस कथा को कुम्भयोग का मूल माना जाता है, वह मेषस्थ गुरु में हुई थी अथवा वृषस्थ गुरु में; और साथ ही, तदनुरूप ग्रहयुति प्राप्त न होने पर क्या बारहवें वर्ष कुम्भपर्व मनाने की परम्परा का उल्लंघन किया जा सकता है। खगोलीय दृष्टि से देखें तो बृहस्पति ग्रह सूर्य की परिक्रमा करने में 4332.82 दिन (11.9 वर्ष) लेता है और एक राशि पर लगभग 361.06 दिन रहता है, पूरे 365 दिन नहीं। इस प्रकार वो लगभग 48 दिन शेष रहते सूर्य की परिक्रमा पूरी कर लेता है। उदाहरण के लिए अगर वो वृष राशि पर पहली जनवरी, 2000 ई. को आता है, तो अगली बार ठीक 12 वर्ष बाद (01.01.2012 को) न आकर, लगभग 48 दिन पूर्व (23.11.2011 को) ही वृष राशि में आ जाएगा; हालाँकि पहली जनवरी, 2012, को भी वह उसी राशि में रहेगा। इस गणना के अनुसार बृहस्पति सूर्य की सातवीं बार परिक्रमा पूरी करते–करते लगभग 336 दिन, और आठवीं परिक्रमा तक लगभग 374 दिन (एक वर्ष से अधिक) पिछड़ जाता है, अर्थात् सातवीं या आठवीं बार राशिपरिवर्तन 12 के गुणांक में न होकर, ग्यारहवें वर्ष ही हो जाएगा। उपर्युक्त उदाहरण में, वर्ष 2012, 2024, 2036, 2048, 2060 तथा 2072 तक तो बृहस्पति तद् तद् वर्षों की पहली जनवरी को उसी (वृष) राशि में ही रहेगा, लेकिन वर्ष 2084 (सातवाँ चक्र) या वर्ष 2096 (आठवाँ चक्र) की पहली जनवरी को वह अवश्य ही, यदि वक्र गति का प्रसंग प्राप्त न हो तो, वृष राशि छोड़कर आगे बढ़ चुका रहेगा। यह एक निर्विवाद खगोलीय तथ्य है।

23. जब हम इस खगोलीय तथ्य को प्रयाग के कुम्भ मेले के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो एक विसंगति उभरकर आती है। परम्परागत मान्यता है कि प्रयाग का कुम्भ मेला हर बारह वर्ष पर बृहस्पति ग्रह के वृष राशि में संचरण के समय होता है। आठवाँ कुम्भ आते–आते बृहस्पति ग्रह का वृष राशि में संक्रमण ग्यारहवें वर्ष ही हो जाता है। यह भी सम्भव है कि ग्यारहवें वर्ष माघी अमावस्या पर बृहस्पति मेष राशि के अन्तिम अंशों पर रहे और उसके तुरन्त बाद वृष राशि पर चला जाए। फिर वो पूरे वर्ष वृष राशि पर रहे, लेकिन बारहवें वर्ष की माघी अमावस्या के ठीक पहले मिथुन राशि पर चला जाए। इस प्रकार माघी अमावस्या पर वृषस्थ बृहस्पति का कुम्भ योग प्राप्त ही नहीं होता है। अब अगर मेषस्थ बृहस्पति को कुम्भयोग मानें तो द्वादशवार्षिक परम्परा खण्डित होती है और अगर इस परम्परा को प्रधानता दी जाए तो मिथुनस्थ बृहस्पति में कुम्भ का नियमविरुद्ध प्रसंग प्राप्त होता है। 1970 ई. के दशक में ऐसा ही हुआ था।[33] अगर यह कहें कि बृहस्पति ग्रह मेष या वृष किसी भी राशि में होने पर 'कुम्भयोग' हो सकता है, तब तो बृहस्पति के हर चक्र में नियमतः दो–दो कुम्भपर्व होने लगेंगे।[34] अतः विशिष्ट खगोलीय ग्रहयोग, प्रयाग के कुम्भपर्व आयोजित किये जाने का मूल कारण नहीं हो सकता है।

---

[33] सन् 1977 में मेषस्थ बृहस्पति की माघी अमावस्या थी, जबकि सन् 1978 में मिथुनस्थ बृहस्पति की। उस बार विद्वानों की सर्वसम्मति से सन् 1977 में ही कुम्भपर्व आयोजित हुआ था।

[34] ''प्रयागकुम्भ के सम्बन्ध में दुर्भाग्यवश पुनः मतभेद उपस्थित हो गया है। विद्वत्परिषद् के अनुसार सूर्यसिद्धान्त, ग्रहलाघव, मकरन्द सबकी सम्मति से संवत् 2021 (ई. 1965) में माघी अमा को मेष के बृहस्पति मिलते हैं ('मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ, कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे चातिदुर्लभः'), अतः उसी समय कुम्भपर्व मनाना चाहिए। दूसरी तरफ़ साधु–महात्मा और विद्वानों की दृष्टि में संवत् 2022 (ई. 1966) में ही कुम्भ मनाना चाहिए, क्योंकि उस समय मकरन्दानुसार माघी अमा को वृष के बृहस्पति मिलते हैंः– ('मकरे च दिवानाथे वृषगे च बृहस्पतौ, कुम्भयोगो भवेत् तत्र प्रयागे चातिदुर्लभः)' इन वचनों के आधार पर मेष या वृष दोनों ही के बृहस्पति कुम्भपर्व के लिए मान्य हैं। प्रथम पक्ष में, सूर्यसिद्धान्तादि सर्वगणितसम्मति से मेषस्थ बृहस्पति मिलने पर भी बारहवाँ वर्ष नहीं मिलता है। जबकि दूसरे पक्ष में सूर्यसिद्धान्त और ग्रहलाघव की सम्मति नहीं मिलती। (यद्यपि) बारहवें वर्ष में कुम्भपर्व होता है, यह प्रामाणिक वचन से सिद्ध है और सदाचार सम्मत भी हैः– 'देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैद्वादशवत्सरैः, जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया।' (तथापि) सन् 1954 ई. के कुम्भपर्व निर्णय के लिए साधु–पण्डितों की सभा में यह निर्णय किया गया था कि कुम्भ प्रति बारहवें वर्ष मनाया जाता है, किन्तु गुरु के स्थितिवश 11वें

24. कुम्भपर्व के प्रारम्भ की यह परम्परागत मान्यता न तो ऐतिहासिक साक्ष्यों से परिपुष्ट होती है और न ही इस परम्परा की श्रृँखला मध्यकाल तक भी जा पाती है। फिर भी, पुराणों में उल्लिखित प्रयाग का माघ माहात्म्य, विशिष्ट अवसरों पर संगम पर स्नान–दान तथा निवास की महिमा, महादान की महिमा, सम्राट् हर्ष द्वारा पूर्वजों के अनुसरण में नियमित अन्तराल में प्रयाग में महादानपर्व का आयोजन इत्यादि कुछ ऐसे अकाट्य तथ्य हैं, जो माघ माह में संगम तट पर नियमित अन्तराल वाली एक सुदीर्घ परम्परा को उपलक्षित करते हैं।[35]

25. कुम्भपर्व की नींव डालने का श्रेय आदि शंकराचार्य अथवा आचार्य मधुसूदन सरस्वती को देने का भी कोई कारण नहीं दिखता। इन दोनों ही आचार्यों की किसी भी कृति में कुम्भपर्व या तत्तुल्य किसी आयोजन का कोई संकेत नहीं मिलता। मध्यकाल में आचार्य माधव द्वारा लिखे गये 'शंकर दिग्विजय' और स्वामी आनन्दगिरि के 'शंकरविजय' ग्रन्थों में भी ऐसा कोई संकेत नहीं है। इस तरह की कोई जनश्रुति भी नहीं है। अखाड़ों का इतिहास भी बेहद धुँधला है और उसके सम्बन्ध में 18वीं शताब्दी के पूर्व का तो कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, यह कुछ विद्वानों के व्यक्तिगत विचार हो सकते हैं, जिनके समर्थन में कोई साक्ष्य अथवा सुदृढ़ मान्यता नहीं है। तथापि, दशनामी संन्यासियों की प्रधानता, मात्र कुम्भनगरियों में अखाड़ों की छावनी लगना, शाही स्नान का आयोजन इत्यादि वर्तमान परम्पराएँ निश्चित तौर पर शंकराचार्य प्रभृति सम्प्रदाय–प्रवर्तक संन्यासियों से ही जुड़ी हैं।

26. प्रयाग कुम्भ के सन्दर्भ में 'कुम्भ' का अर्थ राशिविशेष मानना भी उचित प्रतीत नहीं होता है। यह तथ्य निर्विवाद है कि कुम्भ राशि से सम्बन्धित किसी विशिष्ट खगोलीय स्थिति का प्रयाग के इस पर्व के नामकरण से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। प्रयाग के कुम्भपर्व में शास्त्रोक्त फलदायिता सिर्फ़ मकरस्थ सूर्य की ही है, बृहस्पति ग्रह के किसी राशिविशेष में संचरण की नहीं। बृहस्पति का संचरण तो सिर्फ़ गणना–सौकर्य के लिए है, इसीलिए कभी–कभी (वर्ष 1965 और 1966 ई. की तरह) मेष और वृष दोनों ही राशियों में बृहस्पति के संचरण पर प्रयाग का कुम्भ मना लिया जाता है।[36]

27. कुम्भपर्व की उत्पत्ति सम्बन्धी आधुनिक मत में भी अनेक विसंगतियाँ दृष्टिगत होती हैं। प्रयाग के कुम्भ को हरिद्वार कुम्भ के अनुकरण में शुरू की गयी प्रथा मानने वाले आधुनिक दृष्टिकोण के समर्थक यह स्पष्ट नहीं कर पाते हैं कि यदि हरिद्वार का कुम्भ राशिविशेष में बृहस्पति के संचरण पर 12 वर्षों में एक बार होता है तो छठें वर्ष की अर्द्धकुम्भ परम्परा क्या है और क्या प्रयाग में, यदि रिकेट्स की पूर्वोक्त रिपोर्ट को प्रथम उल्लेख मानें तो, अर्द्धकुम्भ (1864 ई.) पहले आयोजित किया गया एवं कुम्भ मेला (सन् 1870) बाद में। पुनश्च, यदि प्रयाग का कुम्भ प्रागवाल पण्डों ने शुरू किया तो संन्यासियों के अखाड़े इस मेले में शाही स्नान के लिए हर छह वर्ष पर आने को कैसे राज़ी हो गये? और अखाड़ों के शाही स्नान, जो अन्यत्र सिर्फ़ कुम्भ मेलों में होते हैं, प्रयाग के अर्द्धकुम्भ में कैसे होने लगे?

वर्ष में भी मनाया जा सकता है।'', श्री करपात्रस्वामी और मीठालाल ओझा, 'धर्मकृत्योपयोगितिथ्यादिनिर्णयः कुम्भपर्व निर्णयश्च' (सन्तशरणवेदान्ती, वाराणसीः1965), परिशिष्ट, पृष्ठ सं. 1। वर्ष 1965 तथा 1966 दोनों में ही कुम्भ का आयोजन हुआ था, यद्यपि शाही स्नान केवल वर्ष 1966 में ही हुआ था।

[35] "In January, AD 644, Hieuen Tsang witnessed a vast assemblage of people at Allahabad, where the sacred waters of the Jumna and ganges mix their blue and green together. The festival is now known as the Kumbh Mela." - F. Yeats-Brown, 'Pageant of India', (Macrae Smith Company, Philadelphia:1943) Pg 58.

[36] 'प्रयाग के कुम्भकाल में दो प्रकार की ग्रह स्थितियाँ रहती हैं। प्रथम स्थिति में सूर्य–चन्द्र की सूर्यपुत्र शनि के गृह अर्थात् मकर में युति होती है और बृहस्पति सूर्य के उच्चगृह अर्थात् मेष में स्थित होकर, सूर्य–चन्द्र से केन्द्र स्थान का सम्बन्ध बना लेता है। दूसरी में भी सूर्य–चन्द्र की मकर में युति होती है और बृहस्पति चन्द्र के उच्चगृह अर्थात् वृष राशि में स्थित होकर सूर्य–चन्द्र को पूर्ण दृष्टि से देखता है। बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि की शुभता तो ज्योतिषशास्त्र की स्वयंसिद्धि के रूप में सर्वविदित ही है। इन दोनों ही स्थितियों में बृहस्पति सूर्य या चन्द्र के उच्चगृह में स्थित होकर पारस्परिक केन्द्रस्थता अथवा अपनी पूर्ण दृष्टि के श्रेष्ठ मांगलिक योग को प्राप्त कर लेता है।' – डा. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, 'कुम्भपर्व का ज्योतिषशास्त्रीय आधार' –परमार्थ पत्रिका (परमार्थ प्रकाशन, हरिद्वार), कुम्भ विशेषांक, जनवरी–फरवरी 1989, पृष्ठ सं. 12।

28. उपर्युक्त सभी मतों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर हम किसी मतवाद को पूर्णतः सुसंगत तथा तर्कपूर्ण नहीं पाते हैं, फिर भी प्रत्येक मतवाद से हमें प्रयाग की कुम्भ परम्परा से सम्बन्धित कुछ न कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य अवश्य प्राप्त होते हैं जो समेकित किये जाने पर इन प्रचलित मतवादों से कुछ भिन्न परम्परा के अस्तित्व को पुष्ट करते हैं, जिसका हम यथासमय आगे सविस्तार निरूपण करेंगे।

29. आधुनिक दृष्टिकोण परम्परागत मान्यता को तर्क एवं प्रमाण के आधार पर ही सन्दिग्ध मानता है। यह लिखित साक्ष्य की अपेक्षा करता है, क्योंकि उनका मानना है कि ब्रिटिश शासनकाल में तो प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, वृत्तान्त और जनश्रुतियाँ लेखबद्ध की गयी थीं, अतः प्रयाग के कुम्भ का भी लिखित विवरण मिलना चाहिए। आधुनिक विद्वानों का यह आक्षेप उचित ही है कि यदि प्रयाग में किसी यूरोपियन यात्री अथवा ईसाई धर्मप्रचारकों ने वार्षिक पर्व से अधिक अन्तराल के किसी स्नान पर्व अथवा मेले को देखा होता तो अपनी स्वाभाविक लेखनप्रियता के कारण इस 'विचित्र परम्परा' को अवश्य अपने संस्मरण में सम्मिलित करता। 18वीं और 19वीं शताब्दी में सैकड़ों की संख्या में ईसाई मिशनरी अमरीका व ब्रिटेन से भारत आये। इस अवधि में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हज़ारों ब्रिटिश अधिकारी व कर्मचारी, बहुत से यूरोपियन यात्री तथा आम विदेशी नागरिक भी भारत (इलाहाबाद) आये। अवश्य ही इनमें से बहुतों ने अपने पत्र, संस्मरण तथा रिपोर्ट आदि लिखे होंगे, परन्तु यह भी विचारणीय है कि उनमें से कितने हमारे पढ़ने के लिए आज उपलब्ध हैं और उनमें से कितने हम पढ़ पाएँ हैं। बहुत सम्भव है हमें तमाम प्रयासों के बाद वह पुस्तकें/सन्दर्भ उपलब्ध ही न हो पाये हैं, जिनमें प्रयाग के कुम्भपर्व का या किसी अन्य समतुल्य मेले का उल्लेख हो। अतः सिर्फ़ सामग्री की अनुपलब्धता को निश्चायक प्रमाण मान लेना बिलकुल उचित नहीं है। हमें प्रामाणिक सामग्री को ढूँढ़ने का अधिकाधिक प्रयास करना चाहिए।

30. निस्सन्देह विगत 60 वर्षों में प्रयाग के कुम्भ की उत्पत्ति तथा इतिहास को लेकर अनेक गम्भीर एवं परिश्रमपूर्ण शोध किये गये हैं, जिनमें से बहुत सारे प्रकाशित भी हुए हैं, फिर भी वर्ष 1868 ई. के पूर्व का, प्रयाग के कुम्भ के विषय में कोई प्रामाणिक विवरण इन शोधकर्त्ता विद्वानों को उपलब्ध नहीं हो सका। इसका कारण कुम्भविषयक सामग्री का लेखबद्ध न होना नहीं है, प्रत्युत ऐसी पुस्तकों की विरलता एवं दुष्प्राप्यता है। ये दुष्प्राप्य पुस्तकें इक्का–दुक्का जगहों पर ही उपलब्ध हैं। सौभाग्यवश ब्रिटिशकाल में लेखबद्ध कतिपय ऐसी ही दुष्प्राप्य पुस्तकें तथा पत्र–पत्रिकाएँ हमें कुछ प्रयास से प्राप्त हो गयीं, जो सम्भवतः पूर्वोक्त आधुनिक मत के विद्वानों को, स्वमतनिर्धारण के पूर्व, प्राप्त नहीं हो सकी होंगीं अन्यथा वो अपना मत अवश्य संशोधित कर लेते। इन पुस्तकों में हम कहीं कुम्भ का नाम्ना उल्लेख पाते हैं, तो कहीं इसका संकेत मात्र, फिर भी यह प्रयाग के 'कुम्भपर्व' की ऐतिहासिकता के निर्धारण में पर्याप्त उपयोगी हैं। आगे हम इन्हीं पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं में उपलब्ध साक्ष्यों का विवेचन करेंगे जो प्रयाग में कुम्भ–परम्परा के प्रारम्भ सम्बन्धी आधुनिक मत को निरस्त कर देते हैं।

नवीन साक्ष्य

31. ईसाई धर्मप्रचारकों (मिशनरीज़) की रिपोर्ट प्रयाग के माघमेला के विवरण का अच्छा स्रोत हैं, क्योंकि ये मिशनरीज़ मुख्यतः इन मेलों में आने वाली भारी भीड़ को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के उद्देश्य से पूरी मेला अवधि में मेला क्षेत्र में कैम्प डालकर धुआँधार धर्मप्रचार करते थे।[37] इन धर्मप्रचारकों के लेखों में हम प्रयाग के माघमेले, विशेषतः कुम्भ मेलों के उल्लेख की एक अविच्छिन्न श्रृंखला पाते हैं। सन् 1884 में स्टील और फ़िशर द्वारा सम्पादित 'इलाहाबाद गजेटियर' में प्रयाग के कुम्भ मेले का विवरण प्रकाशित हो जाने के बाद तो यह बहुप्रचारित हो गया था, अतः यहाँ हम उसके पूर्व के कुम्भ मेलों का विभिन्न ईसाई धर्मप्रचारकों की रिपोर्टों में उल्लिखित विवरण ही आगे

---

[37] "One of our special forms of labour is preaching at fairs. This is practiced by all our missionaries whenever the opportunity offers. There are a great many minor assemblages, all over the country for religious purposes. The greatest of all is held in Allahabad, during the Hindu month of Magh.", रेव. जोसेफ़ वारेन, 'A Glance Backward at 15 Years of Missionary Life in North India', (प्रेसबिटेरियन प्रकाशन बोर्ड, फ़िलाडेल्फ़िया, 1856), पृष्ठ सं. 119।

प्रस्तुत करेंगे। 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' (CMS) के इलाहाबाद स्थित 'नार्थवेस्ट प्राविन्सेज़ डिविनिटी स्कूल' के तात्कालिक प्रधानाचार्य रेवरेण्ड विलियम हूपर अपने, दिनांक 22–01–1882 के लेख, 'द कुम्भ मेला ऐट इलाहाबाद' (The Kumbha Mela at Allahabad)[38] में लिखते हैं कि :–

> "There has been, from time immemorial, a mela at the confluence of the Ganges with its largest tributary, the Jamuna here in Allahabad.....During the whole lunar month, which the Hindus call Magh......but whenever the Sun happens to leave the sign 'waterpot' within the month it is a far larger affair than usually. This happens once in every ten or twelve years, I hear; and then the mela is called "Kumbha Mela". Kumbha being the Sanscrit for a waterpot. This year happens to be one of these occasional ones."

32. इस लेख में हूपर आगे यह भी लिखते हैं कि इस मेले में तीन विशिष्ट स्नान तिथियाँ होती हैं –(i) मकर संक्रान्ति (ii) माघी अमावस्या, और (iii) माघी पंचमी।[39]

33. एक अन्य ईसाई धर्मप्रचारक, रेवरेण्ड विलियम ब्राउन कीर, की वार्षिक रिपोर्ट 'नोट्स ऑफ़ ए मिशन टूर इन इण्डिया' (Notes of a Mission Tour in India)[40] में हमें वर्ष 1870 ई. के कुम्भ का विवरण निम्नलिखित शब्दों में प्राप्त होता है –

> "At Allahabad, I visited several successful Mission Schools, but they were all suffering from the fact of Magh-Mela or native fair, assembled near the city, at the junction of the rivers Jumuna and Ganges. It was usually large this year (1870) being a Kumbha Mela, occuring but once in twelve years....."

34. वर्ष 1858 ई. में प्रयाग में कुम्भयोग होने के बावजूद सरकारी प्रतिबन्ध के कारण कुम्भ मेले का आयोजन नहीं हुआ था और न ही अखाड़ों का यहाँ आगमन ही हुआ। वर्ष 1857 ई. के विप्लव के दौरान जून 1857 ई. में इलाहाबाद का मिशन कम्पाउण्ड जला दिया गया था। यहाँ ''अमेरिकन प्रेसबिटेरियन चर्च मिशन'' का प्रिण्टिंग–प्रेस तहस–नहस हो गया था। प्रायः सभी यूरोपियन मिशनरीज यहाँ से कलकत्ता भाग गये थे और मिशन की गतिविधियाँ लगभग 6–7 माह बन्द सी रहीं।[41] जनवरी, 1858, में मिशन के पुराने प्रचारक जेम्स ओवेन मेले में धर्मप्रचार के उद्देश्य से इलाहाबाद वापस लौटे, लेकिन यहाँ उनको क़िले के आसपास पूरे मेलाक्षेत्र में स्नानार्थियों की जगह ब्रिटिश सेना की टुकड़ियों के तम्बू गड़े हुए मिले। शहर भर में केवल सैनिक और प्राशासनिक गतिविधियाँ ही नज़र आ रही थीं। मेले के आयोजन पर रोक लगी हुई थी और समूह के रूप में संगम की ओर जाने पर भी प्रतिबन्ध लगा था। स्थानीय प्रागवाल पुरोहित अपना मुहल्ला (प्रागवालटोला) छोड़ कर भाग गये थे। सेना का ख़ौफ़ इतना था कि शहर के सम्भ्रान्त लोग भी स्नानार्थ संगम पर नहीं जाते थे। कुछ प्रागवाल एक–दो करके संगम पर जाते और लोटे में वहाँ का जल लेकर, दारागंज के तटवर्ती गंगा की धारा में उसे मिला कर स्थानीय लोगों के धार्मिक स्नान की व्यवस्था कर रहे थे।[42]

---

[38] यह लेख "The Church Missionary Intelligencer and Record" (Vol-VII New Series, Church Missionary House, London: 1882) के दिसम्बर, 1882, अंक के पृष्ठ सं. 729 से 734 में छपा था।

[39] 'प्रयागे माघमासे तु त्र्यहःस्नानात्तु तत्फलम्, गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत्फलम्।' (मत्स्यपुराण, अ. 107, श्लोक 7–8)।

[40] पूरी रिपोर्ट "The Colonial Church Chronicle, Missionary Journal And Foreign Ecclesiastical Reporter, 1871," (जॉन ऐण्ड चार्ल्स मोज़ले, लन्दन, 1871) के पृष्ठ 143 पर उपलब्ध है।

[41] रेव. एम. ए. शेरिंग, 'The Indian Church During Great Rebellion' (द्वितीय संस्करण, लन्दन, 1859), पृष्ठ सं. 201–227, में "Narrative of the Outbreak in Allahabad of the Destruction of the Mission Property; extracted from the Journal of the Rev. Joseph Owen, Missionary of the American Board of Mission" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित विवरण।

[42] रेव. जेम्स मोफेट, 'The Story of A Dedicated Life' (रॉबिन्सन ऐण्ड कम्पनी, न्यू जर्सी, 1887)। जेम्स ओवेन की डायरी तथा चर्च के अन्य अभिलेखों के आधार पर लिखी गयी इस पुस्तक के पृष्ठ सं. 138 में मोफ़ेट इसी प्रसंग में लिखते हैं:–

35. वर्ष 1847 ई. के प्रयाग कुम्भ मेले का विस्तृत विवरण हमें रेव. जोसेफ़ वारेन के लेख[43] में मिलता है। इस विवरण में 'कुम्भ' नाम के साथ–साथ इसका बारह वर्षीय चक्र स्पष्टतः कथित है :–

> Every twelfth year there is usually a larger assemblage of people here than on other years; and as this is the year, we were expecting a very much larger Mela than we have had two or three years post; but we were agreeably disappointed… ….last year we could not say confidently that the Sikh war did not occasion the thin attendance; and the natives told us not to exult yet, but to wait and see the Kumh Mela. We have seen it and it is not near the average of common years, at least, six or seven seasons ago. Still let no one suppose that this fair was a trifling matter."

36. इससे पूर्व, इलाहाबाद मिशन की वर्ष 1846 की अपनी वार्षिक रिपोर्ट, दिनांकित पहली अक्टूबर, 1846, में भी जोसेफ़ वारेन ने इस मेले का उल्लेख किया था। इस रिपोर्ट में 'प्रेस' शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी–नागरी अक्षरों में प्रकाशित पुस्तिका के विवरण में की गयी एक रोचक टिप्पणी हमारा ध्यान आकर्षित करती है। रिपोर्ट में विभिन्न धार्मिक पुस्तिकाओं के देवनागरी अक्षरों में बड़ी मात्रा में पुनर्प्रकाशन को उचित ठहराते हुए लिखा गया है कि ऐसा इलाहाबाद के आने वाले मेले को दृष्टिगत रखते हुए किया गया है, जो कि बहुत बड़े पैमाने पर होगा। हर बारहवें वर्ष हिन्दू संन्यासियों के प्रमुख सम्प्रदाय यहाँ प्रवास करते हैं और जिसकी वजह से वार्षिक माघमेला की तुलना में बहुत अधिक भीड़ आती है।[44] यह टिप्पणी असन्दिग्ध रूप से वर्ष 1847 ई. के जनवरी–फरवरी माह में होने वाले 'कुम्भ' मेले के दृष्टिगत ही की गयी थी।

37. जोसेफ़ वारेन अक्टूबर 1838 ई. में ''अमेरिकन प्रेसबिटेरियन चर्च'' के मिशनरी के रूप में फिलाडेल्फिया, अमरीका, से हिन्दुस्तान भेजे गये थे, जहाँ उनको इलाहाबाद मिशन में नियुक्त किया गया। अपने प्रिंटिंग प्रेस सम्बन्धी अनुभव के चलते उन्होंने इलाहाबाद में मिशन–प्रेस की स्थापना एवं संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके हिन्दुस्तान के 15 वर्षों के कार्यकाल में लगभग 11 वर्ष इलाहाबाद में ही गुज़रे थे। 1839 ई. में वह माघमेला के पश्चात् इलाहाबाद मिशन में आये थे। वर्ष 1840 ई. में उन्होंने पहली बार माघमेला देखा, जो सम्भवतः अर्द्धकुम्भ मेला था। अपने संस्मरण में उन्होंने इस मेले की भीड़ के बारे में अपने लेख से उद्धृत करते हुए लिखाः–

> "When I first came to this place the assemblage of people was very great- I well remember being almost crushed in the press a very little way from our preaching place. "[45]

'Allahabad was at that time in the midst of a revolution, going to make it for a time the seat of the general government, and the centre of military operations. Changes were taking place in every direction, and everything unsettled, mission work was still impracticable. Hindu Melas were also suspended.'

[43] यह लेख "A letter of the Rev. Joseph Warren: Jan 25, 1847" शीर्षक से "The Foreign Missionary Chronicle" (Vol. XV, Number 08, August, 1847) के पृष्ठ 231–235 में प्रकाशित हुआ था। बाद में जोसेफ़ वारेन ने इस लेख को अपने संस्मरण "A Glance Backward at Fifteen Years of Missionary Life in North India" (Philadelphia, Presbyterian Board of Publication, 1856) में ज्यों का त्यों शामिल कर लिया। वर्ष 1847 ई. के इस लेख में प्रयाग के 'कुम्भ मेले' और उसके बारहवर्षीय चक्र के उल्लेख से प्रोफ़ेसर कामा मैकलीन का यह मत पूरी तरह से निरस्त हो जाता है कि इलाहाबाद का 'कुम्भमेला' स्थानीय प्रागवाल पुरोहितों द्वारा 1860 ई. के दशक में शुरू किया गया था।

[44] "This has been done with special reference to the coming fair at Allahabad, which is expected to be very large- Every twelfth year many of the different sects of Hindu Fakirs have their headquarters here; and the mela is attended by a much larger concourse of people than on common occasions. We have thought it necessary that our magazine should be well stored for the coming campaign." - 'द फ़ॉरेन मिशनरी क्रॉनिकल' (The Foreign Missionary Chronicle" Vol XV, No. 04, April, 1847 (Board of the Foreign Missions of the Presbyterian Church, New York: 1847), पृष्ठ सं. 100।

[45] जोसेफ़ वारेन, वही, पृष्ठ सं. 121।

38. जोसेफ़ वारेन के लेख से अथवा उनके संस्मरण को पढ़ने से कतई यह संकेत नहीं मिलता कि कुम्भमेला की प्रथा हाल ही में शुरू हुई थी। कुम्भपर्व का मनाया जाना एक प्रचलित परम्परा रही होगी, इसीलिए उन्होंने इसके औचित्य पर कोई प्रश्न नहीं उठाया। अन्य वर्षों की भाँति, वर्ष 1847 ई. में भी जोसेफ़ वारेन ने, अपने सहयोगियों जेम्स ओवेन और जॉन फ़्रीमैन के साथ, पूरी तत्परता से ईसाई धर्म का प्रचार किया और सिर्फ़ इसी वर्ष के माघ मेले को 'कुम्भ' नाम से अभिहित किया, अन्य वर्षों के माघमेले को नहीं।

39. वर्ष 1840 ई. के मेले के बारे में एक अन्य महत्त्वपूर्ण विवरण हमें ईसाई मिशनरी जेम्स विलसन के पहली मार्च, 1840 ई. के लेख 'A Few Facts Connected with the Late Mela at Allahabad' में प्राप्त होता है।[46] इस लेख के अनुसार वर्ष 1840 ई. में मकर संक्रान्ति 20 जनवरी को पड़ी थी और उसी दिन से मेले का औपचारिक शुभारम्भ स्नान से हुआ था। किन्तु इस तिथि के पहले से ही साधु–संन्यासियों ने गंगा के किनारे अपने कैम्प बना लिए थे, जिनमें 'निरंजनी' तथा 'निर्वाणी' सम्प्रदाय के नागा प्रमुख थे। ये <u>नागा संन्यासी छह वर्षों मे केवल एक बार</u> आते हैं। इन्हें अन्य तीर्थों का भी भ्रमण करना रहता है जिसे पूरा कर यह पुनः 6 वर्ष में इलाहाबाद आते हैं। जेम्स विलसन भी अमेरिकन प्रेसबिटेरियन चर्च से सम्बद्ध ईसाई धर्मप्रचारक थे जो सन् 1834 से 1851 तक भारत में प्रचार कार्य करते रहे। वह वर्ष 1838 से 1847 तक वह मिशन के इलाहाबाद स्थित केन्द्र में नियुक्त रहे। इस दौरान वह लगभग सभी माघ मेला पर्वों में उपस्थित रहे और उनको विभिन्न साधु–संन्यासियों से बातचीत का अवसर भी मिला।

40. यद्यपि वर्ष 1840 ई. के मेले के इस विवरण में हमें 'कुम्भ' 'अर्द्धकुम्भ' अथवा 'माघ' नाम नहीं मिलता, फिर भी यह हमें एक अतिमहत्त्वपूर्ण सूत्र अवश्य देता है– 'छह वर्ष का अन्तराल'। यह विवरण इस मेले (स्नानपर्व) के दौरान संन्यासी सम्प्रदायों, विशेषतः नागाओं के रहन–सहन, दिनचर्या, खाना–पीना, व्यवहार तथा दार्शनिक मत इत्यादि का सविस्तार उल्लेख करता है। नागा संन्यासियों से बातचीत व उनकी गतिविधियों के सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर लिखे जाने से इसकी प्रामाणिकता भी असन्दिग्ध है। इस लेख में 'निर्वाणी सम्प्रदाय' के संन्यासियों के मेले के विशिष्ट अवसरों पर निकलने वाले 'शाही जुलूस' का भी वर्णन है, जिसमें वरिष्ठ संन्यासी हाथी–घोड़े–ऊँट पर सवार होते हैं और कुछ संन्यासी अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित रहते हैं। स्पष्टतः वर्ष 1840 ई. का माघमेला 'कुम्भपर्व' से छह वर्ष के अन्तराल पर पड़ने वाला 'अर्द्धकुम्भ' मेला ही था।

41. छह अथवा बारह वर्ष के अन्तराल पर पड़ने वाले स्नान पर्व का सन् 1840–41 के आसपास का एक अन्य विवरण हमें लन्दन मिशनरी सोसाइटी के धर्मप्रचारक जेम्स केनेडी के संस्मरणों में मिलता है, जिन्हें वर्ष 1839 में धर्मप्रचार हेतु भारत भेजा गया था और जो वर्ष 1877 तक यहाँ रहे थे। जेम्स केनेडी सन् 1840 में अपने प्रयाग आगमन और यहाँ के भव्य मेले के दौरान धर्मप्रचार के विवरण के प्रसंग में लिखते हैं कि प्रयाग पुरातन काल से एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल रहा है। यहाँ गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम तट पर प्रतिवर्ष जनवरी माह में एक मेला लगता है जो लगभग एक माह चलता है। यद्यपि इसमें अच्छी भीड़ होती है, फिर भी हरिद्वार मेले की तुलना में यह कम ही रहती है। लेकिन हर <u>कुछ वर्षों के अन्तराल में</u> यहाँ त्रिवेणी पर स्नान करना अतिरिक्त पुण्यदायी हो जाता है और तब आने वाली भीड़ भी बहुत अधिक हो जाती है।[47] जेम्स केनेडी यहाँ वार्षिक माघ मेले और 'कुछ वर्षों के अन्तराल पर होने वाले' विशिष्ट स्नान पर्व में अन्तर करते हैं।

---

[46] यह लेख 'द कलकत्ता क्रिश्चियन ऑबज़र्वर' (Edited by Christian Ministers of Various Denominations, Vol-1 (New Series), January to December, 1840, Calcutta) पत्रिका के मई, 1840 ई. के (पंचम) अंक के पृष्ठ 243 पर प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक का नाम 'W' (जेम्स विल्सन) लिखा हुआ है और विवरण के लेखन की तिथि 01.03.1840, इलाहाबाद, अंकित है।

[47] जेम्स केनेडी, 'लाइफ़ ऐण्ड वर्क इन बनारस ऐण्ड कुमाऊँ', (लन्दनः 1884) पृष्ठ सं. 99।

42. इसी क्रम में बैपटिस्ट चर्च के मिशनरी जॉन लॉरेन्स का एक संक्षिप्त विवरण हमें 'मिशनरी हेराल्ड' पत्रिका के अक्टूबर, 1835 ई. के अंक में मिलता है, जिसमें वह सहयोगी मिशनरी जॉर्ज एण्डर्सन के साथ इलाहाबाद मेले में धर्मप्रचार के कार्य का उल्लेख करते हैं। वह लिखते हैं कि इस वर्ष मेले की पवित्रता वार्षिक माघमेले से अधिक है क्योंकि यह बारह वर्ष बाद पड़ा है।[48] ये दोनों मिशनरी इलाहाबाद में 28 जनवरी, 1835, से 04 फरवरी, 1835, तक रहे। लॉरेंस ने अपने विवरण में ईस्ट इण्डिया कम्पनी शासन द्वारा लगाये गये तीर्थयात्री कर (Pilgrim Tax) का उल्लेख तो किया है, लेकिन वह इस मेले के बारह वर्ष में एक बार पड़ने के कारण या उसके पीछे मान्यता इत्यादि के विषय में चुप हैं।[49]

43. इससे पूर्व के अर्थात् वर्ष 1823 ई. के प्रयाग कुम्भ मेले का उल्लेख हमें बैपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी के धर्मप्रचारक एल. मैकिण्टोश की रिपोर्ट में प्राप्त होता है, जो शुरुआत के अन्य बैपटिस्ट मिशनरीज़ की तरह इलाहाबाद के किले के अन्दर रह कर मुख्यतः अंग्रेज़ी सेना के लिए प्रार्थना सभा का आयोजन इत्यादि धार्मिक कृत्य करते थे और साथ ही हिन्दू मेलों आदि के अवसर पर ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। वर्ष 1825 ई. में चर्च मिशनरी सोसाइटी द्वारा प्रकाशित इस रिपोर्ट में मैकिण्टोश इलाहाबाद में मिशन के अब तक के कार्य को प्रभावहीन बताते हुए, हाल में शुरू किये गये कुछ अभिनव प्रयासों के बारे में लिखते हैं और उसके समर्थन में कलकत्ता के एक समाचार पत्र की ख़बर को उद्धृत करते हुए लिखते हैं:–

> "It is stated in a Calcutta Paper, in reference to the last Septennial Bathing at this place- '*Not a single instance of suicidal sacrifice has taken place; and it is delightful to know, that the natives, this year, voluntarily asked for Religious Tracts, which they seemed very anxious to peruse*'...... "[50]

यहाँ सन् 1823 के षाड्वार्षिक पर्व (कुम्भ मेला) का ही साप्तवार्षिक स्नान कह कर उल्लेख किया गया है।

44. कलकत्ता का यह समाचार पत्र 'कलकत्ता जर्नल' था, जिसके 03 फ़रवरी, 1823, के अंक में हमें उपर्युक्त उद्धरण अक्षरक्षः प्राप्त होता है और उससे पहले निम्नलिखित विवरण भी मिलता है –

> "This year being the Seventh year, an immense collection of natives, chiefly of that description named Nagas, assembled at this place (Allahabad), for the purpose of the septennial bathing. It was apprehended that between them and the Bhoiragees some disturbance would have taken place...."[51]

इसी विवरण में आगे लिखा है कि ऐसी सम्भावना थी कि नागाओं और बैरागियों के बीच झगड़ा होगा, लेकिन नहीं हुआ और मेला सामान्य अवसरों के मुकाबले अधिक शान्ति से गुज़र गया। यहाँ हमें न तो 'कुम्भ' संज्ञा मिलती है और न ही बारह वर्ष का अन्तराल, यहाँ तो साप्तवार्षिक स्नान बताया गया है, जो वस्तुतः छह वर्ष को ही द्योतित करता है।

---

[48] "It was the time of the Mela, or great fair, which this year was considered more sacred than ordinary; this occurs in twelve years." -The Baptist Magazine For 1835, Vol 27 (Vol X, Third Series), Published by George Whightman, London, 1835.

[49] वर्ष 1835 ई. के मेले का एक अन्य उल्लेख एक समाचार पत्र के संवाददाता द्वारा भी किया गया है–"The grand day of Mela has passed. The crowd this year has been so great that several people have trodden to death." 'द एशियाटिक जर्नल ऐण्ड मन्थली मिसेलिनी' (अंक–17, मई–अगस्त 1835), पृष्ठ संख्या 230।

[50] 'द मिशनरी रजिस्टर' (चर्च मिशनरी सोसाइटी, लन्दनः 1825) के फ़रवरी, 1825, वाले अंक में 'सर्वे ऑफ़ मिशनरी स्टेशन्स–इलाहाबाद' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित।

[51] यह उद्धरण 'कलकत्ता जर्नल' के हवाले से 'द एशियाटिक जर्नल ऐण्ड मन्थली मिसेलिनी' (अंक–16, जुलाई–दिस 1823), के पृष्ठ संख्या 190 में भी उपलब्ध है।

45. इलाहाबाद के बारह वर्ष के अन्तराल पर पड़ने वाले (कुम्भ) मेले का किसी मिशनरी द्वारा दिया गया आँखों देखा विवरण, वर्ष 1823 ई. से पहले का, हमें अभी तक देखने में नहीं आया है, जिसका प्रमुख कारण है कि इससे पूर्व के वर्षों की अधिकांश मिशनरी रिपोर्ट्स हमें पढ़ने के लिए प्राप्त नहीं हो सकीं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यद्यपि इलाहाबाद में औपचारिक रूप से मिशनरी कार्य वर्ष 1814 में एन. केर द्वारा एक अस्थायी केन्द्र की स्थापना एवं वर्ष 1817 में विलियम हावर्ड पियर्स द्वारा 'बैपटिस्ट मिशन चर्च' की स्थापना के साथ शुरू हुआ था और फिर 1828 ई. में रेव. जी. क्राफ़र्ड ने यहाँ 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' की स्थापना की। परन्तु सही मायने में मिशनरी कार्य ने वर्ष 1835 के बाद ही ज़ोर पकड़ा, जब यह शहर ब्रिटिश साम्राज्य के उत्तर–पश्चिमी प्रान्त (North-Western Province) की राजधानी बना और जब 'अमेरिकन प्रेसबिटैरियन चर्च' के जेम्स मैकईवन ने यहाँ एक ईसाई मिशन स्थापित किया। 'बैपटिस्ट मिशन चर्च' तथा 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' के कार्य बिल्कुल निष्प्रभाव थे और इनके मिशन शीघ्र ही बन्द करने पड़े थे।[52]

46. ऊपर दिये गये मिशनरियों की रिपोर्टों और 'कलकत्ता मन्थली जर्नल' के संवाददाता की वर्ष 1823 ई. की रिपोर्ट के आधार पर इतना तो निश्चित है कि प्रयाग का कुम्भ मेला 1857 ई. की क्रान्ति के बाद प्रागवाल पुरोहितों और ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा बनायी गयी प्रथा नहीं है और यह इससे बहुत पहले से चली आ रही है। इन रिपोर्टों में हमें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही, धार्मिक पवित्रता और आने वाली भीड़ के आधार पर, प्रयाग के माघमेले तीन अलग–अलग वर्गों – द्वादशवार्षिक पर्व, षाड्वार्षिक पर्व, और वार्षिक मेला – में वर्गीकृत दिखायी देते हैं।

47. आगे बढ़ने से पूर्व यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि इलाहाबाद में अनेक वर्षों तक प्रवास करने वाली और भारतीय संस्कृति की परम प्रशंसिका फ़ैनी पार्क्स ने प्रयाग के वार्षिक माघ मेले का तो सविस्तार वर्णन किया है, किन्तु कुम्भादि मेले का उल्लेख क्यों नहीं किया। वस्तुतः फ़ैनी पार्क्स अपने लम्बे प्रवास के दौरान 'कुम्भ' या 'अर्द्धकुम्भ' के अवसर पर प्रयाग में रही ही नहीं। वर्ष 1826 ई. में वह इलाहाबाद आयीं और वर्ष 1836 में यहाँ से चली गयीं। इसके बाद 1838 ई. तथा 1844 ई. में उनका इलाहाबाद में 3–4 माह का संक्षिप्त प्रवास रहा। इस अवधि में वर्ष 1829 ई. तथा 1835 ई. में इलाहाबाद में क्रमशः अर्द्धकुम्भ और कुम्भ मेले पड़े थे और संयोग से इन दोनों ही अवसरों पर वह इलाहाबाद से बाहर रहीं। वर्ष 1829 ई. के जनवरी भर वह बनारस में रहीं और वर्ष 1835 के जनवरी–फरवरी में वह आगरा में थीं। इन दोनों ही अवसरों पर प्रयाग से बाहर रहने के कारण उन्होंने इन वर्षों में मेले के बारे में कुछ नहीं लिखा। उनके संस्मरण डायरी शैली में लिखे गये हैं, इसलिए उनमें अनिवार्यतः तिथि वर्ष के क्रमानुसार ही घटनाएँ दी गयी हैं। अतः इन मेलों का उल्लेख एक डायरीकार द्वारा, स्वयं न देखने के कारण, न किया जाना स्वाभाविक ही है।

48. रही बात 'खुलासात–अल्–तवारीख' (1695 ई.), 'चहार गुलशन' (1759 ई.) तथा 'यादगारे–बहादुरी' (1833 ई.) जैसी पुस्तकों में प्रयाग के कुम्भ अथवा एकाधिक वर्ष के अन्तराल पर होने वाले किसी विशिष्ट पर्व के उल्लेख न मिलने की, तो यह आपत्ति एक वेनेशियन यात्री निकोलाई मनूची के 17वीं शताब्दी के यात्रा विवरण में प्राप्त तत्सम्बन्धी उल्लेख से स्वतः ही निर्मूल हो जाती है। निकोलाई मनूची (1638–1717 ई.) इटली का मूल निवासी था और 1656 ई. में भारत आया था। उसी वर्ष वह दाराशिकोह की सेना में भर्ती हो गया। बाद में वह आमेर के राजा जयसिंह तथा औरंगजेब के पुत्र शाह आलम की सेना में भी कुछ वर्ष रहा और भारत के अधिकांश हिस्सों में उन उन सेनाओं के साथ विभिन्न सैनिक अभियानों में सम्मिलित रहा। 1686 ई. में उसने शाहआलम के पास से भागकर मद्रास प्रेसीडेंसी में शरण ली और चिकित्सक का कार्य करने लगा। उसने ब्रिटिश प्रेसीडेंसी के लिए दुभाषिये का कार्य भी किया था। वर्ष 1717 ई. में हिन्दुस्तान में ही उसकी मृत्यु

[52] Rev. James Long, "Handbook of Bengal Mission in Connection With The Church of England", (John Farquhar Shaw: London, 1848), Pg 224-226

हो गयी। उसने 'स्टोरियो डु मोगोर'[53] नाम से प्रकाशित अपनी पुस्तक में मुगल–साम्राज्य का विस्तृत विवरण लिखा है। इस पुस्तक में मनूची अपने इलाहाबाद के किले में जाने के प्रसंग में लिखता है –

> "Ganges... Jamuna...besides these rivers, there issue from the rock, on which stand the fort and its outwork a petty stream with blue water, which is called the Tirth; it goes by a straight course between the two rivers until it flows with them. Every five years, multitudes of Hindus assemble and wash their bodies in the said stream."

49. मनूची का उपर्युक्त इलाहाबाद–भ्रमण वर्ष 1665 ई. से 1675 ई. के मध्य हुआ था। स्पष्ट है कि उस समय भी पाँच वर्ष के अन्तराल (या छठें वर्ष) पर एक विशिष्ट स्नानपर्व प्रचलन में था। किसी अन्य विपरीत साक्ष्य के अभाव में हमें यह स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि यह उसी विशिष्ट मेले का स्नान था, जिसकी परम्परा का उल्लेख ह्वेनसांग अपने यात्रा विवरण में करते हैं। प्रयाग का यह विशिष्ट मेला समय–समय पर दान पर्व, स्नान पर्व, कुम्भ पर्व, अर्द्धकुम्भ पर्व, महाकुम्भ पर्व इत्यादि विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित होता हुआ, कम से कम 1500 वर्षों से अविच्छिन्न रूप से मनाया जाता रहा है, जिसमें लाखों की संख्या में श्रद्धालु हिस्सा लेते रहे हैं।

50. यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना उचित होगा कि कतिपय पाश्चात्त्य यात्रियों और विद्वानों ने प्रयाग के षाड्वार्षिक विशिष्ट पर्व को छह वर्ष की जगह पाँच या सात वर्षों में होने वाला क्यों कहा है। प्रायः पाश्चात्त्य लोगों के लिए यह समझना कठिन होता था कि 'अर्द्धकुम्भ' कभी पाँच वर्ष, कभी छह वर्ष और कभी–कभी सात वर्ष पर क्यों पड़ जाता है; और जब 'अर्द्धकुम्भ' और 'कुम्भ' सामान्यतः एक–दूसरे से छह वर्ष के अन्तर पर होते हैं तो एक को बारह वर्ष के अन्तराल पर पड़ने वाला तथा दूसरे को छह वर्ष के अन्तराल पर पड़ने वाला क्यों कहा जाता है।[54] अन्तराल का यह व्यतिक्रम खगोलीय युति के कारण होता है। सम्भवतः उस समय तक बृहस्पति के वृष अथवा वृश्चिक राशि में होने का प्रयाग के 'कुम्भयोग' से सीधे सम्बन्ध का तथ्य भी अधिक प्रचलित नहीं था। गणना सम्बन्धी ऐसी त्रुटि करने वाला शायद ही कोई पाश्चात्त्य यात्री या प्रचारक ऐसा रहा हो, जो लगातार दो या अधिक षाड्वार्षिक पर्वों में उपस्थित रहा हो और जिसने सीधे संन्यासियों से ही इसके इतिहास या परम्परा के बारे में जानने की कोशिश की हो। भारतीय संस्कृति से अंजान विदेशी धर्मप्रचारकों के मुंशी (हिन्दुस्तानी भाषा के शिक्षक) और ख़िदमतगार (अनुचर) प्रायः मुस्लिम होते थे जो हिन्दू धर्म के शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों को ठीक से नहीं समझते थे; लेकिन दुर्भाग्यवश यही लोग इनके लिए भारतीय संस्कृति सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने का कार्य करते थे। अतः 18वीं तथा 19वीं शताब्दी के पाश्चात्त्य लेखों में हमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के बहुत से तथ्य विरोधाभासी रूप में मिलते हैं, जिनके संकेत का ग्रहण कर तथ्य का अनुमान लगाना पड़ता है।

---

[53] इसका अंग्रेज़ी अनुवाद विलियम इरविन ने किया था और यह पुस्तक 'मुग़ल इण्डिया 1653–1708' नाम से पाँच भागों में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' के तत्त्वावधान में वर्ष 1907 ई. में प्रकाशित हुई थी। उपर्युक्त उद्धरण इसी अंग्रेज़ी अनुवाद के भाग–2 के पृष्ठ संख्या 82 से लिया गया है।

[54] यह सामान्य लोक विश्वास है कि बृहस्पति एक राशि में एक वर्ष स्थित रहता है और संक्रमण करते हुए बारहवें वर्ष पुनः उसी राशि में पहुँच जाता है। वस्तुतः बृहस्पति इस चक्र को लगभग 48 दिन शेष रहते ही पूरा कर लेता है जिससे कभी–कभी कुम्भ का खगोलीय ग्रहयोग बारह वर्ष की जगह ग्यारहवें वर्ष में ही पड़ जाता है और कभी– कभी किसी चक्र में वृषस्थ बृहस्पति की माघी अमावस्या पड़ती ही नहीं। ऐसी परिस्थितियों में ग्यारहवें वर्ष कुम्भ योग पड़ जाता है, जो अपने से ठीक पहले वाले अर्द्धकुम्भ से पाँच वर्ष पर ही हो जाता है। इसी तरह, कभी–कभी, बृहस्पति ग्रह किसी राशिविशेष में संक्रमण के बाद, वक्र गति (Retrograde Motion) के कारण, पुनः पहली राशि पर आ जाता है और एक नियत अवधि के बाद मार्गी होकर फिर उस राशिविशेष में दोबारा संक्रमित होता है। ऐसी अवस्था में कुम्भयोग तेरहवें वर्ष भी हो सकता है, जो अपने ठीक पहले वाले 'अर्द्धकुम्भ' से सात वर्षों के बाद पड़ता है। छठें वर्ष मेला पड़ना सामान्य नियम है और पाँचवें या सातवें वर्ष पड़ना अपवाद।

प्रयाग में स्नान–दान का माहात्म्य

51. प्रयाग में गंगा और यमुना नदी के संगम पर स्नान की, विशेषकर माघ के महीने में और सूर्य के मकर राशि में संक्रमण के अवसर पर, महिमा भारतीय शास्त्रों में बहुधा वर्णित है।[55] स्नान के अतिरिक्त यज्ञ और महादान[56] के लिए भी प्रयाग सर्वोपरि रहा है। शास्त्रों के अनुसार स्वयं ब्रह्मा ने यहाँ यज्ञ किया था, जो इस तीर्थ के नामकरण का कारण भी बना।[57] पौराणिक काल में अनेक राजा–महाराजाओं ने यहाँ अश्वमेधादि यज्ञ किये थे। गुप्त वंश के सम्राट् समुद्रगुप्त ने भी यहाँ अश्वमेध यज्ञ किया था, जिसकी स्मृतिस्वरूप 'प्रयाग–प्रशस्ति' यहाँ के अशोक–स्तम्भ में उत्कीर्ण है।

52. पुण्यलाभ के लिए यज्ञ के अतिरिक्त महादान का आयोजन भी पुराणों में सविस्तार दिया गया है।[58] सोलह प्रकार के महादानों में से किसी भी एक प्रकार का महादान प्राचीन काल में अनेक राजाओं द्वारा किया गया था। किसी महादानपर्व का प्रामाणिक वर्णन हमें सर्वप्रथम कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन शिलादित्य का मिलता है।[59] ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार, हर्षवर्द्धन अपने पाँच वर्षों में अर्जित धन–दौलत को छठें वर्ष[60] प्रयाग आकर महादानपर्व में दान कर देता था। वर्ष 644 ई. में हर्ष ने छठाँ महादानपर्व आयोजित किया था, जिसमें ह्वेनसांग भी उपस्थित था।

53. ह्वेनसांग लिखता है कि हर्ष के पूर्वजों ने भी इस महादानपर्व का नियमित आयोजन किया था और हर्ष भी उस परम्परा का निर्वहन कर रहा था। ह्वेनसांग के चीनी शिष्य श्रमण ह्वू ली ने अपनी पुस्तक में महादानपर्व के आयोजन का सविस्तार विवरण दिया है। पुस्तक के अनुसार यह पर्व लगभग 75 दिन तक चलता था। हर्ष का आवासीय शिविर गंगा के उत्तरी तट पर (वर्तमान नागवासुकी/दारागंज– सलोरी क्षेत्र) लगता था, जबकि महादानमण्डप संगम से अनतिदूर (वर्तमान परेड ग्राउण्ड/अलोपीबाग क्षेत्र) बनता था। इसमें पहले दिन बुद्ध की मूर्ति स्थापित होती थी, दूसरे दिन आदित्यदेव (सूर्य) की तथा तीसरे दिन ईश्वर (शिव) की। दान भी पहले बौद्ध भिक्षुओं को, फिर ब्राह्मणसंन्यासियों को, फिर अन्य फ़कीरों को और अन्त में ग़रीबों को दिया जाता था।[61]

---

[55] 'सितासिते तु ये स्नाता माघमासे युधिष्ठिरः, न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।' और भी, 'मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव, स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।' (नारदपुराण, उत्तरभाग, अध्याय 63, श्लोक 13–14)।

'सहस्रगुणितं सर्वं तत्फलं मकरे रवौ। गंगायां स्नानमात्रेण प्रयागे तत्प्रकीर्त्तितम्। गंगा ये चावगाहंति माघे मासि सुलोचने। चतुर्युगसहस्रं ते न पतन्ति सुरालयात्।' (नारदपुराण, उत्तरभाग, अध्याय 63, श्लोक 18–19)

'षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टितीर्थशतानि च। माघमासे गमिष्यन्ति गंगायमुनसंगमम्। प्रयागे माघमासे तु त्र्यहःस्नानात्तु तत्फलम्, गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत्फलम्।' (मत्स्यपुराण, अध्याय 107, श्लोक 7–8)।

प्रयाग में माघमास और मकरस्थ रवि के अवसर पर स्नान माहात्म्य के लिए नारायणभट्टरचित 'त्रिस्थलीसेतु' विशेष द्रष्टव्य है, जिसमें पुराणादि ग्रन्थों से तद्विषयक अनेक श्लोक संकलित किये गये हैं।

[56] 'तत्र दानं कर्त्तव्यं यथाविभवसम्भवम्।' मत्स्यपुराण, अध्याय 106, श्लोक 10। और भी, 'प्रयागे माघमासे तु विष्णो प्रीत्यै ददाति यः, विष्णुभक्तिपरेभ्यस्तु तस्य पुण्यमनन्तकम्।'

[57] नारदपुराण, पूर्वभाग, अध्याय 6। 'प्रयाग' पद की व्युत्पत्ति हैः– प्रकृष्ट यागः इति प्रयागः। 'महाभारत' के 'वनपर्व' के तीर्थयात्राप्रकरण में भी प्रयाग को देवताओं की यज्ञभूमि कहा गया है।

[58] 'तदहं सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्, सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम्।
यत्षोडषधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले, पुण्यं पवित्रमायुश्यं सर्वपापहरं शुभम्।
आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम्, हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्।' मत्स्यपुराण, अध्याय 274, श्लोक 4–7।

[59] महाकवि बाणभट्ट ने महादान का उल्लेख 'हर्षचरित' के दूसरे उच्छवास में किया है–'जीविताविधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षा–चीवरेण हारमुक्ताफलानां किरणनिकरेण प्रावृतवक्षःस्थलम्' अर्थात् उनका वक्षस्थल हार की मोतियों के किरणजाल से ऐसा आच्छादित था, मानो वह जीवनकाल में प्राप्त समस्त सम्पत्ति का महादान–दीक्षा सूचक संकीर्ण वस्त्रखण्ड था।

[60] 'पाँच वर्ष पर' पद का अर्थ 'पाँचवे वर्ष' तथा 'पाँच वर्ष के अन्तराल पर अर्थात् छठें वर्ष'– दोनों ही तरह से लोक में प्रचलित है। इसका निर्धारण अन्य साक्ष्यों के आधार पर करना चाहिए। राजा हर्ष ने ह्वेनसांग को बताया था कि पिछले तीस वर्षों में दान के पाँच पर्व आयोजित हो चुके थे और यह वर्ष 644 ई. में उसका छठाँ पर्व था। यह गणना तभी सम्भव है जब तीस वर्षों– 614 ई. से 644 ई. में, ईसवी वर्ष 614, 620, 626, 632 तथा 638 में ये पर्व हुए हों; यदि इन्हें पाँचवें वर्ष में मानेंगे तो ईसवी वर्ष 614, 619, 624, 629, 634, 639 में ही छह पर्व हो जाते हैं और फिर वर्ष 644 ई. में सातवाँ पर्व होता।

[61] 'लाइफ़ ऑफ़ ह्वेनसांग', श्रमण ह्वू ली, प्रो. सैमुएल बील कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ.सं. 186।

54. इस महादानपर्व को बौद्ध–परम्परा समझना भ्रान्ति है। यह सही है कि अपने राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में हर्ष ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था, और इस छठें पर्व में प्राथमिकता बुद्ध–प्रतिमा तथा बौद्ध भिक्षुओं को दी गयी थी, लेकिन यह तथ्य भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि सूर्य और शिव की प्रतिमा भी स्थापित की गयी थी और हिन्दू संन्यासियों को भी दान दिया जाता था, जो किसी भी सूरत में कमतर नहीं था। यही नहीं, यह महादानपर्व हर्ष बौद्ध होने के पूर्व भी आयोजित करता था और उसके पिता–पितामहादि पूर्वज भी इसे आयोजित करते थे,[62] जो निश्चय ही बौद्ध नहीं थे। वस्तुतः कर्मकाण्डप्रिय राजा महादान का आयोजन यज्ञादि वैदिक कृत्यों के उपरान्त करते थे, जबकि कर्मकाण्डविरोधी राजा विद्वत्–सम्मेलन इत्यादि आयोजनों के बाद।

55. ह्वेनसांग यह भी लिखता है कि महादानपर्व के दौरान प्रतिदिन सैकड़ों लोग संगम–तट पर स्नान करने और प्राणत्याग करने आते थे।[63] प्रयाग में संगमतट पर अनशन मृत्यु की प्रथा उस समय पूरे जोर–शोर से प्रचलित थी। अक्षयवट के नीचे तो इस तरह से प्राणत्याग करने वालों की अस्थियों का विशाल ढेर ह्वेनसांग ने स्वयं देखा था। उसने वहाँ कई हठयोगियों को भी स्नान करते देखा था।

56. फिर निकटवर्ती कौशाम्बी, सारनाथ, श्रावस्ती और संकाश्य जैसे प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थों के रहते हुए गंगा–यमुना संगम के प्रयाग स्थित विशुद्ध हिन्दू तीर्थ को महादानपर्व के लिए चुनना कोई साधारण बात नहीं है। यह प्रयाग में एक नियमित अन्तराल (छह वर्ष) पर आयोजित होने वाले महादानपर्व की प्राचीनता का ही द्योतक है।[64]

57. महादानपर्व पाँच वर्ष के अन्तराल पर ही होना चाहिए– ऐसा कोई शास्त्रोक्त निर्देश नहीं था। इसके आयोजन का अन्तराल पूर्णतः इसके आयोजनकर्त्ता राजा पर निर्भर करता था। हर्ष के पूर्वज इसे पाँच वर्ष के अन्तराल पर (छठें वर्ष) आयोजित करते थे और परम्परावशात् हर्ष ने भी वही अन्तराल बनाये रखा क्योंकि इसमें उसे कोई शासकीय/राजनीतिक असुविधा नहीं महसूस हुई। द्वितीय शताब्दी ई. के लगभग रचे गये बौद्धग्रन्थ 'दिव्यावदान' के 'अशोकावदान' प्रकरण में मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा भी पाँच वर्षों के अन्तराल में महादानपर्व आयोजित किये जाने का उल्लेख है, जिसे 'पंचवार्षिक' नाम दिया गया है।[65] हालाँकि यहाँ ये नहीं निर्दिष्ट किया गया है कि अशोक इस पंचवार्षिक पर्व को कहाँ आयोजित करता था और क्या यह पर्व उसने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उपरान्त ही शुरू कराया था। 'पंचवार्षिक' पद 'पाँचवे वर्ष' के लिए प्रयुक्त किया गया है अथवा पाँच वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् के लिए, इस पर भी कोई विचार पूर्व में नहीं किया गया

---

[62] "At the present time, Siladitya raja after the example of his ancestors, distributes here in one day (time) the accumulated wealth of five years." Hiuen-Tsang, 'Siyu-Ki', Buddhist Records of the Western World, प्रो. सैमुएल बील कृत अंग्रेज़ी अनुवाद, (ट्रूबनर ऐण्ड कम्पनी, लन्दनः 1884) पृ.सं. 233।

[63] "To the east of the enclosure of charity, at the confluence of two rivers every day there are many hundreds of men who bathe themselves and die.", ह्वेनसांग, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. सं. 233।

पुराणों में भी प्रयाग में, विशेषतः अक्षयवट के नीचे प्राणत्याग करने की बड़ी महिमा है। 'वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुंचति, सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति।' (मत्स्यपुराण, अध्याय 106, श्लोक 8)। परम्परा की सुदृढ़ मान्यता है कि प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् कुमारिल भट्ट प्राणत्यागने यहीं आये थे, जब उनकी भेंट शंकराचार्य से हुई थी। प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय (795–833 ई.) ने गंगा नदी में जलसमाधि लेकर प्राणत्याग किया था। जहाँगीर ने भी अपनी आत्मकथा में अक्षयवट को कटवाने का कारण, धार्मिक कारणों से लोगों द्वारा बड़ी संख्या में इसके नीचे आत्महत्या किया जाना बताया है।

[64] "From days of old the various kings have frequented this spot, for the purpose of practising charity's and hence the name given to it, the "Arena of Charitable Offering". There is a tradition which says that it is more advantageous to give one mite in charity in this place than a thousand in any other place; and therefore from old times this place has been held in honour."- श्रमण ह्वू ली, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ.सं. 184।

[65] 'बिम्बिप्रभृतिभिः पार्थिवेन्द्रैर्द्युतिन्धरैः, न कृतं तत् करिष्यामि सत्कारद्वयमुत्तमम्। बोधिं च स्नापयिष्यामि कुम्भैर्गन्धोदकाकुलैः, संघस्य च करिष्यामि सत्कारं पंचवार्षिकम्।' – 'दिव्यावदान' (डॉ. पी. एल. वैद्य द्वारा संपादित संस्करण, मिथिला इंस्टीट्यूट, दरभंगा : 1959), पृष्ठ सं. 94।

'अहम् आर्यसंघस्य शतसहस्रं दास्यामि। कुम्भसहस्रेण च बोधिं स्नापयिष्यामि। मम नाम्ना घृष्यतां पंचवार्षिकमिति।', वही, पृष्ठ सं. 100।

है। 'पंचवार्षिक' वस्तुतः बौद्धभिक्षुओं/विद्वानों की बैठक थी, जो शास्त्रचर्चा के उद्देश्य से होती थी और जिसके अन्तिम सत्र में अशोक सभी भिक्षुओं को दान दिया करता था।[66] 'दिव्यावदान' के ही 'धर्मरुच्यावदान' प्रकरण में एक बौद्ध राजा के अधीनस्थ वासव नाम के सामन्त राजा के द्वारा बारह वर्ष के यज्ञ के उपरान्त ब्राह्मणादि सुपात्रों को 'महादान' दिये जाने का उल्लेख किया गया है।[67]

58. सम्भवतः यह महादान परम्परा प्रयाग क्षेत्र का आधिपत्य प्रतिहार राजाओं और उनके बाद पाल व सेन राजाओं के हाथ जाने तक चलती रही।[68] परवर्तीकाल में प्रयाग का क्षेत्र कड़ा–मानिकपुर सूबे का हिस्सा बन गया, जहाँ अलाउद्दीन खिलजी सूबेदार था। इसके बाद प्रयाग निरन्तर मुस्लिम शासकों के हाथ में रहा, जिन्होंने इसके प्रायः वो समस्त बौद्ध व हिन्दू धार्मिक स्थल ध्वस्त कर दिये, जो ह्वेनसांग ने देखे थे। वर्ष 1583 ई. में बादशाह अकबर ने यहाँ एक क़िला बनवाया और इसे इलाहाबास[69] नाम देकर एक नये सूबे की राजधानी बनाया।

59. उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास की जानकारी रखने वाले किसी भी व्यक्ति को यह अन्दाज़ा लगाने में बिल्कुल असुविधा नहीं लगेगी कि प्रयाग तीर्थक्षेत्र के मुस्लिम शासकों के साम्राज्य का हिस्सा होने से, किसी गैर मुस्लिम राजा द्वारा, यहाँ महादान पर्व का आयोजन करना क्यों सम्भव नहीं था। हाँ, इस तीर्थ में स्नान प्रतिबन्धित नहीं था, क्योंकि माघस्नान आदि विशिष्ट अवसरों पर गैर–मुस्लिम तीर्थयात्रियों से धार्मिक कर वसूल कर राजकोष में वृद्धि की जाती थी।[70] यही कारण था कि इस विशाल सम्मेलन का मुख्य कर्म महादान से स्नान मात्र में सीमित हो गया, किन्तु प्रति छह वर्ष पर साधु–संन्यासियों तथा दूरस्थ प्रदेशों के श्रद्धालुओं का प्रयाग आगमन अपना विशिष्ट स्वरूप बरकरार रख सका।

60. शंकराचार्य द्वारा दशनामी संन्यासियों का संगठन स्थापित किये जाने के बाद से ये संगठन अध्ययन–साधना इत्यादि के अलावा तीर्थस्नान यात्रा पर भी जाया करते थे। व्यक्तिगत भ्रमण के अलावा कभी–कभी कुछ विशिष्ट धार्मिक अवसरों पर ये संगठन सामूहिक स्नान के लिए भी जाते थे। प्रयाग का महादानपर्व (मोक्ष पर्व) भी उन कतिपय अवसरों में से एक था, जहाँ ये संगठन समवेत रूप से जाते थे और माघ भर पवित्र संगम पर स्नान करके पुण्य लाभ करते थे।[71] सम्भवतः नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इनका प्रथम आगमन हुआ होगा। बाद में महादान परम्परा के बन्द हो जाने पर भी माघ–स्नान की शास्त्रोक्त व्यवस्था का पालन करने और आम जनता में धार्मिक चेतना जगाये रखने के दृष्टिगत अन्य व्यस्तताओं के चलते, इन्होंने छह

---

[66] 'ततो राजा अशोकः पंचवार्षिकं पर्यवसिते सर्वभिक्षून् त्रिचीवरेणाच्छाद्य चत्वारि....', वही, पृष्ठ सं. 103।

[67] 'तदा च वासवेन राज्ञा द्वादशवर्षाणि यज्ञमिष्ट्वा यज्ञावसाने राज्ञा पंच महादानप्रदानानि व्यवस्थापितानि।' वही, पृष्ठ सं. 152।

[68] राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग के द्वारा उज्जैन में हिरण्यगर्भमहादान आयोजित करने का उल्लेख मिलता है। अकबर ने पूर्व हिन्दू राजाओं के महादानपर्व से प्रेरित होकर, पुण्यलाभ के लिए, इस प्रथा को पुनः प्रारम्भ किया। उसने पुराणोक्त सोलह महादानों में सर्वोपरि 'तुलादान' को चुना और विभिन्न शुभ अवसरों पर वह धन–धान्यादि से अपनी तौल कराकर, उस राशि को फ़क़ीरों तथा ज़रूरतमन्दों में वितरित करवा देता था। यह परम्परा औरंगजेब और उसके पुत्रों के शासनकाल में भी चलती रही, लेकिन राजकोष की रिक्तता के कारण परवर्ती मुग़ल शासकों को इसे बन्द करना पड़ा। (श्रीराम शर्मा, 'The Religious Policy of the Moghul Emperors', Asia Publishing House, New Delhi, 1940, पृष्ठ सं. 48)।

[69] अकबर ने प्रयाग का नया नाम 'इलाहाबास' रखा था, जो अरबी और हिन्दी का मिश्रण था। लेकिन शाहजहाँ ने इसका नाम बदलकर 'इलाहाबाद' कर दिया। (खत्री सुजानरायकृत 'खुलासात–अल तवारीख' मुहम्मद ज़फ़र हसन द्वारा सम्पादित संस्करण, दिल्लीः1918, पृष्ठ सं. 41) इस तथ्य से अनजान बिशप रेगिनाल्ड हेबर, अपनी इलाहाबाद यात्रा के दौरान इस बात से हैरान थे कि यहाँ के मुसलमान निवासी शहर को 'इलाहाबास' क्यों कहते हैं, जबकि इसका नाम 'इलाहाबाद' है। (बिशप हेबर, 'जर्नी थ्रू अपर प्राविंसेस ऑफ़ इण्डिया', लन्दनः1828)।

[70] निकोलाई मनूची, पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ सं. 82। इसके अतिरिक्त, 'द फ़ार्मर्स मैगज़ीन ऐण्ड पीरियोडिकल वर्क' (अंक–3, वर्ष 1802, आर्चीबाल्ड कांस्टेबल, एडिनबर्ग) में प्रकाशित, इलाहाबाद क़िले में नियुक्त एक फ़ौजी अधिकारी के 9 जुलाई, 1798, को लिखे पत्र में प्रयाग के मेले के दौरान संगम पर स्नान के लिए जाने वाले प्रत्येक स्नानार्थी से अवध के नवाब द्वारा कर वसूली का संक्षिप्त विवरण मिलता है।

[71] 'माघ मकरगत रवि जब होई, तीरथपतिहिं आव सब कोई। एहिं प्रकार भरि माघ नहाहीं, पुन सब निज–निज आश्रम जाहीं। प्रतिसंवत् अति होहि अनन्दा, मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा।' तुलसीदास, 'रामचरितमानस', बालकाण्ड, 43(1) व 44(2)।

वर्षों के अन्तराल पर सामूहिक आगमन और स्नान का क्रम जारी रखा, जो आज भी निर्बाध रूप से चल रहा है।[72]

61. जब बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के लगभग राजाओं का ये महादानपर्व दशनामी संन्यासियों के सामूहिक स्नान–पर्व में रूपान्तरित हुआ तब इस परम्परा ने धीरे–धीरे एक सुदृढ़ धार्मिक मान्यता का रूप ले लिया। पहले जहाँ स्नान–पुण्य के साथ प्रचुर दान प्राप्त करने के लिए लोग छठें वर्ष प्रयाग जाते थे, वहीं अब स्नानपुण्य लाभ के साथ संन्यासियों का सामूहिक स्नान लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। आम श्रद्धालु संन्यासियों के सत्संग और सामूहिक स्नान के दर्शन के लिए बड़ी संख्या में यहाँ आने लगे। इस तथ्य की पुष्टि हमें सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सन्त गोस्वामी तुलसीदास की 'कवितावली' (उत्तरकाण्ड, पद्य 135) के निम्नलिखित पद्यांश से भी होती है, जिसमें वह देवताओं को भी प्रयाग के संगम पर साधु–संन्यासियों के सामूहिक स्नान के दर्शन का अभिलाषी बताते हैं:–

> 'देव कहैं अपनी–अपनी, <u>अवलोकन तीरथराज चलो</u> रे।
> देखि मिटै अपराध अगाध, <u>निमज्जत साधु–समाज</u> भलो रे।।'

62. सोलहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में चैतन्य महाप्रभु अपनी तीर्थ यात्रा के क्रम में प्रयाग पधारे थे और तीन दिन रह कर वृन्दावन चले गये। वहाँ कुछ समय व्यतीत करके मकर संक्राति स्नान हेतु वह पुनः प्रयाग आये और माघ भर प्रवास किया। यहाँ अन्य बड़े साधु–संन्यासियों के अतिरिक्त प्रसिद्ध शुद्धाद्वैतवेदान्ती आचार्य वल्लभ से उनकी भेंट हुई। अपने प्रयाग प्रवास के मध्य चैतन्य महाप्रभु वल्लभ के अरैल स्थित आश्रम भी गये थे, जहाँ अन्य कई साधुओं ने आकर उनके दर्शन किये थे। स्वामी सारदेशानन्द ने अपनी पुस्तक 'श्री चैतन्यमहाप्रभु' में विभिन्न तर्कों के आधार पर उस वर्ष 'कुम्भ' पर्व होना स्वीकार किया है।[73] अन्य कुछ इतिहासकार भी चैतन्य का कुम्भपर्व के अवसर पर वृन्दावन से प्रयाग आकर कई दिन तक प्रवास करना स्वीकार करते हैं।[74] विभिन्न सम्प्रदायों के वरिष्ठ आचार्यों का प्रयाग प्रवास सम्भवतः षाड्वार्षिक पर्व के कारण ही था।

63. चैतन्य महाप्रभु के शिष्य सनातन गोस्वामी (1488–1558 ई.) ने स्वकृत 'श्रीबृहद्भागवतामृतम्' के द्वितीय खण्ड के प्रथम अध्याय में गोलोकमाहात्म्य प्रसंग में प्रयाग के संगमतट पर सैकड़ों साधुओं के विशिष्ट सामूहिक स्नान का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में किया है–

> तस्मिँलसन्माधवपादपद्मे गंगाश्रितश्रीयमुनामनोज्ञे।
> <u>स्नानाय माघोषसि तीर्थराजे प्राप्तान् स साधून् शतशो</u> ददर्श।। (श्रीबृहद्भागवतामृतम् 2.1.55)

अर्थात् (उस ब्राह्मण ने) श्रीकृष्ण के चरणरूपी कमल के कारण सुशोभित और गंगा यमुना के संगम से मनोहर लगने वाले तीर्थराज प्रयाग में माघ के महीने में प्रातःस्नान के लिए एकत्र हुए सैकड़ों साधुओं को देखा।

64. फ़्रांसीसी यात्री ज्याँ डि थेवेनॉट अपनी भारत यात्रा के दौरान सन् 1666 ई. में इलाहाबाद आया था। वह संन्यासियों के बारे में लिखता है कि ये लोग <u>विशिष्ट अवसर पर</u> इलाहाबाद में एकत्र होते हैं और यहाँ <u>सामूहिक रूप से गंगा में स्नान करके धार्मिक उत्सव मनाते</u> हैं।[75] इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों द्वारा चुन–चुनकर गैर मुस्लिम धार्मिक स्थल (मंदिर) ध्वस्त किये जा रहे थे, लाखों लोगों द्वारा पूजित हिन्दू बौद्ध–जैन प्रतिमाएँ तोड़कर, अपमानित करने के

---

[72] "But in those days it was by no means easy to travel from one place to another and the sadhus lived far apart from one another. So it was that they agreed to foregather periodically in order to discuss ways and means of giving practical guidance to the ordinary man." - दिलीप रॉय और इन्दिरा देवी, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ. सं. XXiii ।

[73] 'श्री चैतन्यमहाप्रभु', हिन्दी अनुवाद, (अद्वैत आश्रम, मायावती, 2001) पृष्ठ सं. 211।

[74] मेलविल टी. केनेडी, 'The Chaitanya Movement' (Oxford University Press, 1925), पृष्ठ सं. 48।

[75] द्रष्टव्य – 'इण्डियन ट्रैवेल्स ऑफ़ थेवेनॉट ऐण्ड करेरी', (नेशनल आर्काइव्स ऑफ़ इण्डिया, नई दिल्ली, 1949)।

उद्देश्य से उन टुकड़ों को विभिन्न मस्जिदों की सीढ़ियों पर प्रतिदिन मुस्लिमों द्वारा पददलित होने के लिए चुनवायी जा रही थीं, धर्म के नाम पर नरसंहार किया जा रहा था और गैर–मुस्लिमों को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया जा रहा था, आम भारतीयों के लिए संन्यासियों का संगठित समूह धार्मिक अस्तित्व बनाये रखने का एकमात्र सम्बल रहा हो। इन संगठित संन्यासियों में शैव मतावलम्बी दण्डी स्वामी, वैष्णव मतावलम्बी बैरागी साधु, उदासीन सम्प्रदाय के साधु, और नानकपन्थी निर्मल साधुओं के साथ–साथ धर्म रक्षा के लिए शस्त्र धारण करने वाले अखाड़ों के नागा संन्यासी भी थे।[76]

65. यही दशनामी संन्यासियों के समूह जब छठें वर्ष आते थे तो स्नान के विशिष्ट तीन दिन (मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी तथा मौनी अमावस्या) को छोड़कर माघमास के शेष दिनों में धार्मिक उपदेश देते, भगवत् भजन करते, दीक्षादान करते, और जनसामान्य को साधना के उपाय बताते।[77] संन्यासी संगठनों से इस प्रकार मेल–मिलाप व वार्तालाप का अवसर मिलना छह वर्ष में एक बार ही सम्भव था। इन कारणों ने इस छठें वर्ष के सामूहिकस्नान पर्व को जनसामान्य के लिए धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बना दिया, भले ही उस वक्त (या प्रयाग में मराठा प्रभुत्व होने) तक न तो इस पर्व की शास्त्रीय मान्यता थी, और न ही यह परलोक में कोई अपूर्व फल देने वाला माना गया था। प्रयाग में मकरगत रवि और माघमास में संगम में स्नान तथा कल्पवास का जो फल है, उतना ही फल 'छठवें वर्ष' मिलता था, इसके अलावा कोई अन्य पुण्यादि फल नहीं मिलते थे। यही कारण है कि पूरे मध्यकाल के उपलब्ध साहित्य में हमें छठें वर्ष के स्नान की, पूर्वोक्त माघ–मकरगतरवि के फल से अतिरिक्त किसी फलवत्ता का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

66. इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दशनामी संन्यासी सम्प्रदाय और उनके अखाड़े मध्यकाल में भी षाड्वार्षिक पर्व के अवसर पर प्रयाग में स्नान तथा प्रवास करते थे और उनकी यह परम्परा अभी तक चल रही है। यही कारण है कि कुम्भपर्व की वर्तमान व्यवस्था में, जहाँ हरिद्वार, उज्जैन तथा नासिक में प्रति बारह वर्ष पर इन संन्यासी अखाड़ों का आगमन होता है, वहीं प्रयाग में यह अखाड़े प्रति छह वर्ष पर ही आते हैं। इसीलिए प्रयाग में कुम्भ–स्नान के अतिरिक्त अर्द्धकुम्भ स्नान को भी उतना ही धार्मिक तथा प्राशासनिक महत्त्व प्राप्त है। अभी हाल ही में उत्तरप्रदेश सरकार ने एक शासनादेश के द्वारा प्रयाग के 'अर्द्धकुम्भ' मेले का नामकरण 'कुम्भ मेला' और 'कुम्भ' मेले का नामकरण 'महाकुम्भ' कर दिया है।

67. वस्तुतः कोई मेला 'कुम्भ' है या नहीं, यह सिर्फ नामकरण अथवा शासकीय मान्यता पर आधारित नहीं रहा है प्रत्युत इसका प्रमुख मानक विभिन्न सम्प्रदायों के मान्यताप्राप्त अखाड़ों का आगमन, प्रवास और विशिष्ट स्नानयोग पर सामूहिक स्नान करना है।[78] पर्व के प्रारम्भ में ये अखाड़े युद्ध के लिए सेना के प्रयाण के सदृश हाथी–रथादि पर सवार होकर अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित होकर बाजे–गाजे के साथ एक जुलूस की शक्ल में निकलते हैं, जिसे 'पेशवाई' कहते हैं। यह जुलूस तद्तद् अखाड़ों के प्रयाग शहर स्थित स्थायी मुख्यालय से निकलकर मेला क्षेत्र में स्थित उनके अस्थायी शिविरों में पहुँच कर समाप्त होते हैं, जहाँ समस्त संन्यासी मेला अवधि पर्यन्त प्रवास करते हैं। सम्पूर्ण मेला अवधि के मध्य तीन विशिष्ट स्नान योग पड़ते हैं, जिनमें प्रत्येक अखाड़े के संन्यासी सामूहिक रूप से स्नान करते हैं, जो 'शाही स्नान' नाम से प्रचलित है।[79] ह्वेनसांग ने हर्ष के

---

[76] द्रष्टव्य – त्रिनाथ मिश्र, पूर्वोक्त पुस्तक, तथा सर जदुनाथ सरकार, 'ए हिस्ट्री ऑफ़ दशनामी नागा संन्यासी' (पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित)

[77] 'ब्रह्म निरूपन धरम विधि वरनहिं तत्त्व विभाग। कहहिं भगति भगवन्त कै संजुत ग्यान विराग।' तुलसीदास, वही, बालकाण्ड, दोहा 44।

[78] 'It is these *Kumbh* fairs only that are formally attended by the corporate bodies of the various sects of religious ascetics, the *akharas* of *fakirs*.' - 'इलाहाबाद गजेटियर' (इलाहाबादः 1884), सी.डी.स्टील तथा फ़िशर।

[79] इस विषय पर 7 अक्टूबर, 1882, के 'नार्थ–वेस्टर्न प्राविंसेज़ गजट' में प्रकाशित टी. बेंसन की माघमेला रिपोर्ट विशेष द्रष्टव्य है।

महादानपर्व में हर्ष व अन्य 18 राजाओं के प्रवास शिविरों से महादानमण्डप तक जुलूस की शक्ल में अश्व–हस्ती सवारी, अस्त्र–शस्त्रास्त्र में सुसज्जित होकर ससैन्य–सानुचर जाने का जो विवरण दिया है,[80] उसकी स्पष्ट छाप वर्तमान 'पेशवाई' तथा 'शाही स्नान' में दिखती है। बहुत सम्भव है कि हर्ष के परवर्ती हिन्दू राजा महादानमण्डप–जुलूस के साथ–साथ अपने शाही स्नान का भी भव्य आयोजन करते रहे होंगे, जिसे तात्कालिक दशनामी संगठनों ने देखा होगा और फिर जब मुस्लिम शासन में राजकीय जुलूस व स्नान बन्द हो गये, तब इन संगठनों ने अपने जुलूस व शाही स्नान शुरू कर दिये। यह परम्परा पर्याप्त पुरानी है, भले ही 'पेशवाई' तथा 'शाही स्नान' जैसे अभिधान अपेक्षाकृत नवीन हों।

68. 'अखाड़ा' दशनामी संन्यासियों का वह संगठन है, जो स्वधर्मरक्षा के लिए शस्त्रधारण करने लगा था। अखाड़ों की स्थापना कब, कैसे एवं कहाँ हुई इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। मान्यता है कि मध्यकाल में विदेशी शासकों के द्वारा जब हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार बहुत बढ़ गये, तब दशनामी संन्यासियों ने विवश होकर अपने धर्म को नष्ट होने से बचाने के लिए संन्यासियों की एक अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित टुकड़ी संगठित की, जो परवर्ती काल में 'अखाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। संन्यासियों की ये सशस्त्र टुकड़ियाँ प्रयाग समेत प्रमुख धार्मिक स्थलों पर होने वाले विशिष्ट स्नान पर्वों के दौरान दशनामी संन्यासियों और उनके अनुयायियों के रक्षार्थ तद् तद् स्थानों पर नियतावधि के लिए प्रवास करती थीं। बड़ी संख्या में उपस्थित ये संन्यासी अपने अस्थायी आवास अथवा छावनी में रहकर स्वयं भी स्नानादि समस्त धार्मिक कृत्य सम्पन्न करते थे और शासकीय आक्रान्ताओं से निपटने के लिए तैयार भी रहते थे। प्रयाग के षाड्वार्षिक पर्व के दौरान भी ये टुकड़ियाँ (अखाड़े) मेला क्षेत्र में अपनी छावनी स्थापित कर माघपर्यन्त रहती थीं।[81] सभी संन्यासी 'अखाड़े' के सदस्य नहीं होते थे, किन्तु 'अखाड़े' के सभी सदस्य अनिवार्य रूप से दशनामी संन्यासी होते थे। अखाड़े के संन्यासी 'गुसाईं' अथवा 'नागा' कहे जाते थे, जो निर्वस्त्र रहते थे अथवा भगवा वस्त्र धारण करते थे। श्वेतवस्त्रधारी वैष्णव बैरागी, भगवाधारी उदासीन सम्प्रदाय के साधु, और नानकपन्थी निर्मल साधु यद्यपि संगठित थे, लेकिन इनके द्वारा शस्त्रधारण कर अखाड़े के रूप में रहने का उल्लेख नहीं मिलता। इन सम्प्रदायों के अखाड़े सम्भवतः 19वीं शताब्दी में ही गठित हुए थे।

69. इस तथ्य के प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध हैं कि महन्त राजेन्द्र गिरि के नेतृत्व में सशस्त्र नागा संन्यासियों की एक टुकड़ी सन् 1751 के स्नानपर्व के दौरान (गणना के अनुसार उस वर्ष कुम्भ मेला था और सम्भवतः नागाओं के प्रवास का कारण भी यही था) तीर्थयात्रा पर इलाहाबाद के संगम तट के पास छावनी डाले हुई थी, और उसी दौरान मुहम्मद बंगश की सेना ने इलाहाबाद पर आक्रमण किया था।[82] नागाओं ने इसका सशस्त्र प्रतिरोध किया था। इसी तरह कुछ और जगहों पर नागाओं द्वारा आक्रमणकारियों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही किये जाने के साक्ष्य मिलते हैं। अठारहवीं

---

[80] "Siladitya raja pitched his tent on the north bank of the Ganges. The king of South India, Tu-li-popacha (Dhruvbhatt) located himself on the west of the junction of the rivers. Kumara raja occupied the south side of the river Jumna, by the side of a flowering grove. On the morrow morning the military followers of Siladitya raja and of Kumara raja embarked on ships and the attendants of Dhruvabhatt raja mounted their elephants, and so, arranged in an imposing order, they proceeded to the place of the appointed assembly. The kings of the eighteen countries joined the cortege according to arrangement."- श्रमण ह्वू ली, पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ सं. 185.186।

[81] "The Sankranti, which constitutes the first great day and from which the Hindu consider the mela as fairly began occurred on 20th of January. Previous to that time people began to encamp in large numbers on the beach. Several sects of religious mendicants began at an early period, fit up quarters for themselves. Among these were two sects of Nagas who come only once in six years....The two sects make regular tours to several different shrines, viz. Allahabad, Gaya, Jagannath, The Godavari, Rameshwar, Sagar, Haridwar and few other places. They complete their circuit in Six years." - जेम्स विलसन, 'A Few Facts Connected with the Late Mela at Allahabad', वही।

[82] 'By chance one Indragir Sunyasi, had come there on a pilgrimage with five thousand naked fighting fakirs, who lay between the old city and the fort. These took the side of Wazir's people.'- 'द बंगश नवाब ऑफ़ फ़रुख़ाबादः ए क्रॉनिकल', विलियम इरविन, 'जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' अंक–XLVIII कलकत्ता, 1879।

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुग़ल सत्ता के क्षीण पड़ने और मराठों तथा अंग्रेजों के उत्कर्ष के साथ–साथ जब हिन्दुओं को कुछ धार्मिक स्वतन्त्रता मिली, तो नागा संन्यासियों ने कुम्भादि विशिष्ट पर्वों के दौरान अन्य हिन्दू सम्प्रदायों पर अपना धार्मिक प्रभुत्व जमाने का प्रयास किया। मेजर थॉमस हार्डविक और कैप्टेन रेपर के यात्रा विवरणों से पता चलता है कि हरिद्वार (मराठा प्रभुत्व) और प्रयाग (अवध के नवाब के अधीन) के कुम्भ मेले का समस्त नियन्त्रण नागा संन्यासियों के हाथ में ही रहता था, हालाँकि वैष्णव 'बैरागी' साधु संख्या में भी अधिक थे और जनसामान्य में लोकप्रियता में भी आगे थे। नागाओं ने अन्य सम्प्रदाय के साधुओं पर धर्मस्थलों पर अस्त्र–शस्त्र लेकर चलने पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा दिया था। प्रयाग में मेलाक्षेत्र के विस्तृत और, साथ ही साथ, सैनिक किले के पार्श्ववर्त्ती होने से यहाँ षाड्वार्षिक पर्व के दौरान अन्तर्साम्प्रदायिक हिंसा नहीं होती थी, किन्तु हरिद्वार के मेले में संन्यासियों के आपसी झगड़े बहुत होते थे। वर्ष 1760 और 1796 ई. के हरिद्वार कुम्भ के दौरान नागा संन्यासियों का अन्य सम्प्रदायों से हिंसक संघर्ष हुआ, जिनमें दोनों पक्षों के सैकड़ों संन्यासियों की जान गयी।[83] वर्ष 1801 ई. में इलाहाबाद तथा वर्ष 1802 ई. में हरिद्वार ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया था, जिसके बाद अंग्रेज़ों ने नागा संन्यासियों की सैनिक गतिविधियाँ सीमित कर दी थीं।[84] फलतः बैरागियों ने कमज़ोर पड़ गये नागाओं के प्राधिकार का प्रबल विरोध शुरू कर दिया और दोनों सम्प्रदायों में कुम्भ/अर्धकुम्भ मेलों के दौरान हिंसक झड़पें बढ़ गयीं। वर्तमान की व्यवस्था के अनुसार नागा, बैरागी, उदासीन तथा निर्मल – सभी सम्प्रदायों ने मिलकर आपसी समन्वय के लिए एक 'अखाड़ा परिषद्' का गठन किया है, जिसका निर्णय सर्वमान्य होता है।

70. प्रयाग के कुम्भ मेले के आयोजन के सन्दर्भ में एक व्यावहारिक किन्तु महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य ध्यान देने योग्य है। वर्ष 1583 ई. के लगभग अकबर द्वारा प्रयाग नगर का पुनर्निर्माण शुरू किया गया।[85] उस काल में संगम के निकट यमुना तट पर विशाल किला,[86] उससे कुछ दूरी पर एक

---

[83] "the Goosseyns, who being the first here *(at Huridwar Kumbh Mela in 1796 AD)* in point of numbers and power… erected the standard of superiority, and proclaimed themselves regulators of the police. Apprehending opposition, in assuming this authority, they published an edict, prohibiting all other tribes from entering the place with their swords, or arms of any other description… the Byraagees, who were the next powerful sect, gave up the point, and the rest followed their example. Thus the Goossaeyns paraded with their swords and shields, while every other tribe carried only bamboos through the fair. The ruling power was consequently held by the priests of the Goossaeyns, and during the continuance of the Mela, the police was under their authority, and all duties levied and collected by them. For Huridwar, though immediately connected with the Maharatta government, and, at all other seasons, under the rule and control of that state, is, on these occasions, usurped, by that party of the Fakeers, who prove themselves most powerful ", मेजर थॉमस हार्डविक, 'नैरेटिव ऑफ़ ए जर्नी टु श्रीनगर', एशियाटिक रिसर्चेज़ अंक–6 (लन्दनः 1801), पृष्ठ सं. 314–315।

[84] "....bloodshed and murder inseparable from the Cumbha Mela, as, for many ages past their duodecennial periods have been marked with some fatal catastrophe. A very salutary regulation was enforced by our police; prohibiting any weapons being worn or carried at the fair. Guards were posted at the different avenues to receive the arms of the passengers, a ticket was placed on each and a corresponding one was given to the owner; the arms were returned on the ticket being produced." - कैप्टेन फ़ेलिक्स विंसेण्ट रेपर, 'नैरेटिव ऑफ़ ए सर्वे फ़ॉर डिस्कवरिंग द सोर्सेज़ ऑफ़ द गंगा', एशियाटिक रिसर्चेज़ (Vol-XI, 1812), पृ.सं. 461।

[85] 16वीं शताब्दी के प्रसिद्ध दार्शनिक विज्ञानभिक्षु उस कालखण्ड में प्रयाग में ही थे और लम्बे समय तक प्रयाग की इमारतों को बनते देखकर ही उन्होंने सांख्यसूत्र 'भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात्' (5.115) का भाष्य करते हुए उपमा दी कि 'यथा राज्ञः पुरनिर्माण इत्यर्थः'। अर्थात् जैसे राजा स्वयं कोई श्रमसाध्य कार्य नहीं करता प्रत्युत मजदूर लोग उसके लिए इमारतें बनाते हैं, फिर भी लोक में राजा का ही कर्तृत्व कहा जाता है। उसी तरह देह के व्यापार में 'पुरुष' साक्षात् अधिष्ठाता नहीं है, प्राणादि साक्षात् अधिष्ठाता हैं। पुरुष का अधिष्ठाता कहा जाना मात्र प्राणादि के संयोग के कारण है।

[86] अबुलफ़ज़ल अपनी 'आईने–अकबरी' में लिखते हैं कि यह क़िला ठीक संगम पर चार खण्डों में बनाया गया था। पहला स्वयं सम्राट् के रहने के लिए जिसमें 12 आनन्दवाटिकाएँ थीं, दूसरा बेगमों और शहज़ादों के लिए, तीसरा अन्य शाही कुटुम्बियों के लिए और चौथा रक्षकों तथा नौकर–चाकरों के लिए था।

इस किले के विस्तार के बारे में शालिग्राम श्रीवास्तव अपनी 'प्रयाग प्रदीप' पुस्तक के पृष्ठ सं. 237, 241 में लिखते हैं– 'हमको खोज से इलाहाबाद की कलेक्टरी से वर्ष 1867 ई. का एक काग़ज़ मिला है, जिसमें इस क़िले का ब्यौरा इस प्रकार लिखा है कि यह क़िला 38 ज़रीब (2280 गज़) लम्बा और 26 ज़रीब (1560 गज़) चौड़ा है, क्षेत्रफल 983 बीघा और घेरा 28

विशाल बाग़ (खुसरोबाग),[87] सराय व बावली और गंगा के तट पर एक बाँध का निर्माण प्रमुख रूप से हुआ। किला और बाँध का निर्माण नवम्बर 1583 ई. में शुरू हुआ था। अकबर ने सम्भवतः 1582 ई. के कुम्भ मेले के उपरान्त यह निर्माण कार्य शुरू कराया था। निर्माण कार्य हेतु आवश्यक सामग्री का परिवहन मुख्यतः जलमार्ग से ही हुआ था। उन निर्माण–सामग्रियों का संग्रहण निर्माणस्थल से अनतिदूर अर्थात् मेलाक्षेत्र में ही हुआ होगा। निर्माण हेतु नियुक्त लगभग 20,000 कारीगर और मजदूर भी इसी मेलाक्षेत्र में प्रवास करते रहे होंगे। यह निर्माण कार्य वर्ष 1610 ई. में अंग्रेज़ यात्री विलियम फिंच के प्रयाग भ्रमण के समय भी चल रहा था और उस समय भी लगभग 5000 मजदूर यहाँ कार्य कर रहे थे, यद्यपि किले का बड़ा भाग बन चुका था और सूबेदार शहज़ादे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे थे।[88] इसमें कोई सन्देह नहीं कि निर्माण के इन वर्षों में गंगा नदी का तटवर्ती क्षेत्र (वर्तमान संगम तट से लेकर बघाड़ा मुहल्ला तक) और संगम से भरद्वाज आश्रम तक, लगभग समग्र रूप से सामग्री भण्डारण तथा अस्थायी निवास के लिए प्रयुक्त होता रहा होगा। इस क्षेत्र के अन्तर्गत भी (वर्तमान अल्लापुर, अलोपीबाग़ तथा सोहबतियाबाग़ में) उस समय बड़े–बड़े वृक्षों से युक्त विशाल उपवन थे, जो रिहाइश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थे। इन कारणों के फलस्वरूप उस काल विशेष में, यद्यपि माघस्नान तो प्रयाग क्षेत्र में किसी तरह होता रहा, किन्तु दशनामी साधुओं की संगठित छावनी और सामूहिक स्नान, समुचित जगह के अभाव में नहीं सम्भव थे। यह औपचारिक स्नान भी बस किसी तरह से हो तो जाता था, लेकिन परम्परा जिस भव्यता की अभ्यस्त थी, वो सम्भव नहीं था। फिर, सामूहिक स्नान उस काल तक भी न तो शास्त्रोक्त विधान था और न ही उसकी धार्मिक अवश्यकरणीयता थी। यह श्रद्धा का विषय अवश्य बन चुका था और भारी भीड़ खींचने में सक्षम था इसीलिए संन्यासी सम्प्रदाय इस परम्परा की भव्यता को अक्षुण्ण रखना चाहता था।

71. विचार मन्थन के बाद संन्यासी सम्प्रदाय द्वारा निर्धारित किया गया होगा कि औपचारिक स्नान प्रयाग में भले हो जाय, सामूहिक स्नान की भव्यता यहाँ न सही किसी अन्य धार्मिक तीर्थ में प्रदर्शित की जाए। इसके लिए हरिद्वार का चयन किया गया, जहाँ मेष संक्रान्ति (सूर्य का मेष राशि पर जाना) के अवसर पर गंगास्नान का शास्त्रोक्त विधान था और जहाँ इस अवसर पर बड़ी संख्या में श्रद्धालु स्नान किया करते थे। काल–निर्धारण 'कुम्भस्थ गुरु' (बृहस्पति ग्रह का कुम्भ राशि पर

ज़रीब है। इसके बनाने में 6,17,20,214 रुपये ख़र्च हुए थे और यह क़िला 45 वर्ष 5 माह और 10 दिन में बना था। इसमें 23 महल, 3 ख़्वाबगाह और झरोखे, 25 दरवाज़े, 23 बुर्ज़, 277 मकान, 176 कोठरियां, 2 ख़ासोआम, 77 तहख़ाने, 1 दालान, 20 तबेले, 1 बावली, 5 कुँए और एक यमुना की नहर थी। इनका निर्माण शहज़ादा सलीम, राजा टोडरमल, भारथ दीवान, पयागदास मुशरिफ, सईद खाँ, और मुख़लिस ख़ाँ के प्रबन्ध में हुआ था।........18वीं शताब्दी के अन्त में जब यह क़िला अंग्रेज़ों के हाथ आया तो उन्होंने इसको अन्य सैन्य किलों के समान सुदृढ़ बनाने के लिए इसके महलों को तोड़ दिया, ऊँची दीवारों तथा बुर्जों को गिरा कर छोटा कर दिया और भीतरी इमारतों की काट–छाँट कर बैरकें तथा शस्त्रागार बना दिया।'

[87] इसका निर्माण कार्य जहाँगीर ने इलाहाबाद का सूबेदार (1599–1605) रहते हुए प्रारम्भ करवाया था। उस समय तक भी किले के अन्दर का निर्माण कार्य पूर्ण नहीं हुआ था, यद्यपि अधिकांश महल तथा इमारतें बन चुकी थीं। 'मिफ़ताहुल तवारीख़' के अनुसार क़िले के बचे हुए मसाले से जहाँगीर ने खुसरोबाग़ की दीवारें बनवाई थीं। खुसरोबाग़ का निर्माण कार्य जहाँगीर के राज्यारोहण (1605 ई.) के बाद ही पूरा हुआ था, क्योंकि इसके दरवाज़े पर लगे शाही लेख में 'जहाँगीर' उपाधि का उल्लेख है जो सलीम ने राज्यारोहण के उपरान्त ही धारण किया था। जहाँगीर ने यह बाग़ एक विशाल सराय के हिस्से के रूप में बनवाया था। जहाँगीर की पत्नी मानबाई उर्फ़ शाह बेगम (खुसरो की माँ) ने वर्ष 1604 ई. में इलाहाबाद में आत्महत्या कर ली थी तो जहाँगीर ने उसका मकबरा यहीं बनवाया था। इस बाग़ का नाम पहले 'शहराराबाग़' था, जिसमें शहज़ादा खुसरो को जहाँगीर ने कैद करके रखा था और जिसका उल्लेख 'तुजुके जहाँगीरी' में मिलता है। वर्ष 1610 ई. में जब यूरोपियन यात्री विलियम फिंच यहाँ आया था, तब इस बाग़ में केवल खुसरो की माँ का मकबरा था। परवर्ती काल में जब खुसरो को वर्ष 1622 ई. में यहाँ दफ़न किया गया तो उसके बाद से यह खुसरोबाग़ नाम से मशहूर हो गया। इस बारे में विस्तृत विवरण के लिए शालिग्राम श्रीवास्तव की पूर्वोक्त पुस्तक विशेष द्रष्टव्य है।

[88] "Alabasse (Allahabad)...the town and castle stand out on the further side of Ganges pleasantly seated, called anciently Praye (Prayag). It hath beene fortie yeeres abuilding, and is not yet finished; neither is like to bee in a long time. The Acabar (Akbar) for many yeeres had attending this worke by report twentie thousand persons, and as yet there continue working thereon some five thousand of all sorts. It will be one of the most famous buildings of the world"- विलियम फिंच, 'अर्ली ट्रैवेल्स इन इण्डिया 1583.1619',(विलियम फ़ोस्टर द्वारा संपादित, ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, 1921), पृ. सं. 177।

स्थित होना) के शास्त्रीय विधान का किया गया। शास्त्रों में वार्षिक स्नान पर्व का ही प्रायः विधान है, परन्तु यह अन्तराल सामूहिक स्नान के लिए पर्याप्त नहीं था क्योंकि इन दशनामी संन्यासियों को अन्य तीर्थों में भी यात्रा करनी रहती थी और वह यात्रा पैदल होने के कारण बहुत समय लेती थी। षाड्वार्षिक स्नान का कोई शास्त्रीय विधान तो था नहीं, अतः बिना शास्त्र समर्थन के नयी परम्परा डालना दुष्कर था। तदतिरिक्त, मात्र कुम्भस्थ गुरु का विधान शास्त्र में उपलब्ध था,[89] जो बारह वर्ष के अन्तराल पर था। अस्तु दीर्घावधिक ही सही, सामूहिक स्नान की परम्परा को बनाये रखने और उसे अपेक्षित शास्त्रीय मान्यता प्रदान करने की दृष्टि से इस ग्रहयोग को चुन कर नये 'कुम्भस्थ गुरु' स्नान की नींव रख दी गयी।[90] हरिद्वार कुम्भ में शाही स्नान की तिथियों के मध्य, प्रयाग की अपेक्षा, अधिक अन्तराल होने से इस स्नानपर्व के स्वरूप में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। पहाड़ी प्रदेशों से आने वाली बहुसंख्यक जनता और दिल्ली, लाहौर, काबुल एवं गुजरात से आने वाले व्यापारियों ने इसमें धार्मिकता के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक पहलुओं का भी समावेश कर दिया। शीघ्र ही यह धार्मिक पर्व, लोगों के मेल–मुलाक़ात, मनोरंजन, और क्रय–विक्रयादि आर्थिक गतिविधियों का भी केन्द्र बन गया।[91] इस प्रकार प्रयाग का सामूहिकस्नानपर्व हरिद्वार आकर 'कुम्भमेला' में रूपान्तरित हो गया। निर्माणकार्य पूरा होने पर जब सामूहिकस्नानपर्व प्रयाग वापस आया, तो भी हरिद्वार का 'कुम्भ' मेला बन्द नहीं हुआ क्योंकि संन्यासीगण धार्मिक कारणों से तथा शासक व शासित वर्ग आर्थिक कारणों से इसे जारी रखना चाहते थे। तब से लेकर आज तक हरिद्वार में यह कुम्भपर्व हर बारह वर्ष पर आयोजित होता चला आ रहा है।

72. जब क़िला आदि का निर्माण कार्य पूरा होने के बाद प्रयाग (जो अब इलाहाबाद बन चुका था) का मेला क्षेत्र पुनः स्नान के लिए उपलब्ध हो गया, तो यहाँ का भव्य षाड्वार्षिक सामूहिकस्नान पुनः चालू हो गया। परन्तु बड़े जोर–शोर से आयोजित किया गया हरिद्वार का 'कुम्भपर्व' भी चालू रखा गया। प्रयाग का षाड्वार्षिक सामूहिकस्नान पर्व इस कालखण्ड में भी 'माघमेला' अथवा 'कल्पवास' नाम से ही अभिहित होता था, उसके लिए सम्भवतः कोई पृथक् नाम नहीं दिया गया था। जबकि हरिद्वार का पर्व पुराणोक्त विशिष्ट खगोलीय स्थिति के कारण 'कुम्भपर्व' नाम से प्रसिद्ध हो गया, क्योंकि यह गुरु (बृहस्पति ग्रह) के कुम्भराशि पर स्थित होने पर ही होता था।

73. हरिद्वार में बृहस्पति ग्रह के संचरण के सापेक्ष मेष संक्रान्ति के पर्व की विशिष्टता ने विद्वानों तथा ज्योतिर्विदों का ध्यान प्रयाग के षाड्वार्षिक सामूहिकस्नान पर्व के दौरान बृहस्पति ग्रह के संचरण की ओर आकर्षित किया। बृहस्पति एक राशि पर लगभग एक वर्ष तक रहता है, अतः हरिद्वार का कुम्भ पर्व 12 वर्षों के अन्तराल पर आयोजित होना उपयुक्त ही था, लेकिन प्रयाग में षाड्वार्षिक पर्व क्रमशः वृष (अथवा मेष) और वृश्चिक राशि पर बृहस्पति के संचरण के समय होते थे, जिससे इसे बृहस्पति के साथ जोड़ने और तत्सम्बन्धी नामकरण में अवश्य ही कठिनाई आयी होगी। निदान,

---

[89] 'योऽस्मिन् क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भेज्येऽजगे रवौ। स तु स्याद्वाक्पति साक्षात्प्रभाकर इवापरः।।' नारदपुराण, उत्तरार्द्ध, अध्याय 66, श्लोक 44–45।

[90] इस कार्य में शासकीय सहमति भी अवश्य रही होगी, क्योंकि प्रयाग का पर्व शासकीय कार्य अर्थात् किले के निर्माण के कारण बाधित हो रहा था। फलतः सम्राट् अकबर के प्रमुख मंसबदार राजा मानसिंह ने सामूहिक स्नान के लिए हरिद्वार के ब्रह्मकुण्ड पर हर की पैड़ी का प्रसिद्ध पक्का घाट बनवाया और एक गंगा मन्दिर भी बनवाया, जहाँ 'मानसिंह की छतरी' आज भी दृष्टिगोचर होती है। सम्भवतः इसी समय से यह स्थान 'हरिद्वार' कहा जाने लगा, जबकि इसके पूर्व यह गंगाद्वार और विष्णुद्वार नाम से अभिहित होता था। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता अलेक्ज़ेडर कनिंघम अपनी हरिद्वार सम्बन्धी रिपोर्ट में लिखते हैंः– "For the convenience of bathers a ghat is said to have been built here by the celebrated Man Singh, but this had gradually ruinous." –ASI Reports Made During 1862-1865, Vol-II, (Government Central Press, Shimla:1871), Pg 235

[91] ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मेजर थॉमस हार्डविक अपनी श्रीनगर यात्रा के दौरान वर्ष 1796 ई. में कुछ समय हरिद्वार रुके थे जहाँ उन्होंने कुम्भ मेला देखा था। अपने यात्रा वृत्तान्त 'Narrative of A Journey to Srinagar' में वह लिखते हैं– "Although the performance of a religious duty is their primary object, yet, many avail themselves of the occasion, to transact business, and carry on an extensive annual commerce.", (Asiatick Researches, Vol VI (London:1801), pg 312).

वर्ष 1808 ई. का हरिद्वार कुम्भ देखने वाले कैप्टेन फ़ेलिक्स रेपर भी लिखते हैं– "The fair is totally unconnected with the ostensible purport of the meeting;... and a Mela is a necessary consequence of their religious convocations; numbers are led hither as much from commercial as holy motives."- कैप्टेन रेपर, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ.सं. 450।

जिस वर्ष भव्य सामूहिक स्नान की वापसी प्रयाग में हुई, उसी वर्ष से 12 वर्ष जोड़कर, बृहस्पति का संचरण उस वर्ष वृष राशि में होने से, वृषस्थ बृहस्पति वाले माघ मास को द्वादश वार्षिक साम्य के आधार पर, कालान्तर में, प्रयाग का 'कुम्भ' कहा जाने लगा।[92] और (क्योंकि) दो 'कुम्भों' के मध्य में, वृश्चिक राशि पर बृहस्पति के संचरण (के दौरान) वाले माघ स्नान की द्वादश वार्षिक स्नान के महत्त्व से किंचित् भी न्यूनाधिक्य न होने के कारण अपनी महत्ता बरकरार रही; अतः उसे 'कुम्भी' अथवा 'अर्द्धकुम्भ' नाम से पुकारा जाने लगा।

74. प्रयाग मे षाड्वार्षिक 'अर्द्धकुम्भ' नामकरण भी इस सम्भावना को पुष्ट करता है कि प्रयाग के पर्व का 'कुम्भ' नामकरण मात्र हरिद्वार कुम्भ से बारह वर्षीय साम्य के दृष्टिगत ही हुआ है, क्योंकि 'कलश' अथवा 'कुम्भ राशि' अर्थ होने पर 'अर्द्धकुम्भ' संज्ञा निरर्थक हो जाएगी। 'आधा कलश' अथवा 'राशि का अर्द्धांश' अर्थ कतई अभिप्रेत नहीं हो सकता, जबकि कुम्भ का अर्थ द्वादशवार्षिक पर्व लेने पर 'अर्द्धकुम्भ' स्वतः ही षाड्वार्षिक अर्थ देता है।

75. इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि मुग़ल दरबार के रोज़नामचों तथा दरबारी इतिहास–लेखकों की कृतियों में प्रयाग के षाड्वार्षिक स्नान पर्व का उल्लेख नहीं मिलता। इतिहास–लेखन प्रायः धर्मान्ध मुस्लिम दरबारियों द्वारा किया गया है, जो हिन्दू, बौद्ध अथवा जैनियों के धार्मिक विचारों को बिना समझे, तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करते थे। अकबर और जहाँगीर को छोड़कर लगभग सभी तुर्क और मुग़ल शासक हिन्दू धार्मिक स्थलों की तोड़–फोड़ और धार्मिक मान्यताओं को प्रतिबन्धित करने में संलग्न रहे। उन्होंने तो प्रयाग के कल्पवास तथा माघमेला और हरिद्वार के 'कुम्भ' का भी वर्णन नहीं किया, फिर प्रयाग के षाड्वार्षिक सामूहिकस्नान पर्व की बात ही क्या। अलाउद्दीन खिलजी से लेकर औरंगजेब तक, फिर बंगश शासकों, अवध के नवाबों द्वारा यद्यपि प्रयाग में माघपर्व के दौरान स्नान करने वाले श्रद्धालुओं से कर वसूला जाता रहा था, परन्तु राज्य की ओर से आवागमन के साधन अथवा यातायात नियन्त्रण जैसी कोई प्राशासनिक व्यवस्था नहीं की जाती थी। ऐसे पर्व उनके लिए राजस्व वसूली का ज़रिया मात्र थे, उनका कोई दायित्व नहीं था, अतः इसका उल्लेख रोज़नामचा में न किया जाना स्वाभाविक ही था।

76. अलाउद्दीन खिलजी के समय में प्रयाग में स्नान पर धार्मिक कर लगना शुरू हुआ था। अकबर के शासनकाल में प्रयाग के स्नान से धार्मिक कर हटा दिया गया था, जो जहाँगीर के शासनकाल तक हटा रहा। शाहजहाँ के समय से माघमेला स्नान पर पुनः कर लगा दिया गया। मुग़ल सत्ता के क्षीण होने पर इलाहाबाद वर्ष 1720 ई. के आस–पास फर्रुखाबाद के मुहम्मद खाँ बंगश के कब्जे में रहा। 1732 ई. में बंगशों की पराजय से लेकर वर्ष 1761 ई. तक यह क्षेत्र प्रायः छत्रसाल और मराठों के आक्रमण का शिकार रहा। यद्यपि यहाँ नाम के लिए दिल्ली सल्तनत के सूबेदार रहते थे किन्तु प्रभुत्व मराठों का था, जो यहाँ से चौथ वसूलते थे। वर्ष 1743 ई. में अवध के सूबेदार सफदरजंग ने इलाहाबाद पर कब्जा कर लिया। बक्सर के युद्ध (1764 ई.) में अंग्रेजों ने मुग़ल बादशाह, अवध के नवाब तथा बंगाल के नवाब के गठबन्धन को हरा दिया। दोनों पक्षों में 1765 ई. में इलाहाबाद की सन्धि हुई जिसके तहत अंग्रेजों ने अवध के नवाब से इलाहाबाद छीन लिया और किले में सर राबर्ट फ़्लेचर के नेतृत्व में अपनी सेना नियुक्त कर दी। मुग़ल बादशाह शाहआलम को भी किले में वर्ष 1766 ई. से 1771 ई. तक रहने के लिए बाध्य किया गया और उसके व्यय के लिए

---

[92] यह उपपत्ति इस तथ्य से भी पुष्ट होती है कि प्रयाग के कुम्भ मेले के लगभग सभी शुरुआती विवरणों में कुम्भ के समय की खगोलीय युति, सूर्य का मेष राशि में तथा बृहस्पति का कुम्भ राशि में होना, बताया गया है, जो वस्तुतः हरिद्वार कुम्भ का योग है। यह त्रुटि स्टील और फ़िशर के 'इलाहाबाद गजेटियर' (1884 ई.), सर विलियम हण्टर के 'दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ इण्डिया' (1885 ई.), सिडनी लो के 'ए विज़न ऑफ़ इण्डिया' (1906 ई.), 'द पायोनियर' की 'इण्डियन वर्ल्ड' पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट (फ़रवरी, 1906 ई.), बर्न के 'दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ़ युनाइटेड प्रॉविंस' (1908 ई.), नेविल के 'इलाहाबाद गजेटियर' (1911 ई.), सर जदुनाथ सरकार की 'दशनाम नागा संन्यासियों का इतिहास' (1950 ई.) इत्यादि प्रसिद्ध पुस्तकों में परिलक्षित होती है। विलियम हूपर ने अपने पूर्वोक्त लेख में प्रयाग कुम्भ का कारण माघ मास के दौरान सूर्य का कुम्भ राशि से संक्रमण बताया है, जो समझ से परे है। हूपर का अनुसरण करते हुए जॉन नेसफ़ील्ड ने अपनी 'ब्रीफ़ व्यू ऑफ़ कास्ट सिस्टम इन नॉर्थ–वेस्टर्न प्रॉविंसेज़ ऐण्ड अवध'(1885 ई.) में सूर्य के कुम्भ राशि से मकर राशि पर संक्रमण के दौरान प्रयाग कुम्भ का पुण्यकाल बताया है।

इलाहाबाद व कोरा परगने की दीवानी उसे सौंप दी। शाहआलम के दिल्ली वापस जाने पर अंग्रेज़ों ने किले को छोड़कर शेष इलाहाबाद नवाब को वापस दे दिया। बाद में, वर्ष 1801 ई. में अंग्रेजों ने औपचारिक रूप से इलाहाबाद को अपने कब्ज़े में कर लिया।

77. अंग्रेज़ों ने 1801 ई. में इलाहाबाद में कब्जे के बाद माघमेला में स्नानार्थियों पर तीर्थयात्री कर की वसूली जारी रखी। सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा पारित वर्ष 1810 ई. के 'रेगुलेशन-XVIII' द्वारा इलाहाबाद के तीर्थयात्रियों से ली जाने वाली विभिन्न शुल्क दरों को विनियमित किया गया। सन् 1838 के उत्तरार्द्ध में यह शुल्क लेना बन्द कर दिया गया और वर्ष 1840 के 'अधिनियम-X' के द्वारा किसी भी प्रकार के धार्मिक कर अथवा शुल्क को पूर्णतः प्रतिबन्धित कर दिया गया। हालाँकि मेला क्षेत्र में अन्तर्सम्प्रदायी हिंसा के निवारणार्थ पुलिस बल का बन्दोबस्त पूर्ववत् रखा गया था। उनके द्वारा मेला क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार कार्य को बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ जनोपयोगी कार्य भी किये गये। इलाहाबाद में ईसाई मिशनरीज़ का धर्मप्रचार कार्य वर्ष 1814 ई. में एन. केर द्वारा एक अस्थायी केन्द्र स्थापित करने से प्रारम्भ हुआ और इस कार्य में तेजी तब आयी जब जेम्स मैक्इवान ने 1834–35 ई. में 'अमेरिकन प्रेसबिटेरियन चर्च' का प्रचार केन्द्र यहाँ स्थापित किया, जो आज तक चल रहा है। मिशनरी रिपोर्टर्स ने ही ब्रिटिश शासन के दौरान सर्वप्रथम, इलाहाबाद के षाड्वार्षिक मेले को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभिलेखों तथा समाचार पत्रों में स्थान दिलाया और यहाँ के द्वादशवार्षिक मेले को 'कुम्भ' नाम से अभिलेखों में अभिहित किया। वर्ष 1857 ई. की क्रान्ति के बाद किले के मेला क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित होने से, ब्रिटिश शासकों ने पहली बार माघमेले को महज राजस्व स्रोत से कुछ अधिक समझकर उसके धार्मिक स्वरूप को देखा, और तभी उन्हें 'कुम्भ तथा अर्द्धकुम्भ' और सामान्य माघमेले का अन्तर नज़र आया। तदुपरान्त यह अभिधान ब्रिटिश शासकीय अभिलेखों में सम्मिलित हुए। यह भी एक तथ्य है कि वर्ष 1857 ई. से पहले कोतवाल, मुंशी आदि पदों पर मुस्लिम धर्मावलम्बियों की ही प्राधान्येन नियुक्ति हुआ करती थी, जो अक्सर भारतीय परम्पराओं को ठीक से नहीं जानते/समझते थे। अतः सरकारी विवरणों में 'कुम्भ', 'अर्द्धकुम्भ' अथवा 'षाड्वार्षिक' मेले का 'माघमेले' से पृथक् उल्लेख न होना स्वाभाविक ही था।

निष्कर्ष

78. प्राचीन काल में राजा–महाराजाओं द्वारा पुण्यलाभ के लिए एक नियमित अन्तराल में आयोजित किया जाने वाला महादान, चाहे वह अश्वमेधादि यज्ञ के साथ आयोजित हो या यज्ञादि से स्वतन्त्र रूप में, माघमास में प्रयाग के संगमतट पर पापमुक्ति के लिए आने वाले स्नानार्थियों के साथ–साथ दान–प्राप्ति के अभिलाषी साधु–फकीरों के बड़ी संख्या में एकत्रीकरण का कारण बनता रहा है। राजा हर्ष के समय यह अन्तराल पाँच वर्ष (आयोजनवर्ष को छोड़कर) का होता था। आदि शंकराचार्य के द्वारा स्थापित दशनामी सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा (धर्मप्रचार के उद्देश्य के दृष्टिगत) इस महादान के अवसर पर संगमतट पर माघपर्यन्त प्रवास कर एकत्रित जनसमुदाय के मध्य धर्मप्रचार किया जाता था। इस दौरान तीन विशिष्ट तिथियों (मकर संक्रान्ति, मौनी अमावस्या तथा वसन्त पंचमी) पर इन संन्यासियों द्वारा संगम में सामूहिक स्नान किया जाता था, जो शीघ्र ही उपस्थित आमजन के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया। मध्यकाल में दिल्ली के तुर्क और मुग़ल शासकों के समय में दानपर्व बन्द हो गये और धर्म के नाम पर प्रताड़ित किये जाने पर ये संन्यासी सम्प्रदाय 'अखाड़ों' के रूप में संगठित हुए, तब यह दानपर्व पूर्णतः सामूहिक स्नान के पर्व में परिवर्तित हो गया, हालाँकि इसका पाँच वर्ष (आयोजनवर्ष को छोड़कर) का अन्तराल पूर्ववत् बना रहा।

79. वर्ष 1583 ई. के लगभग जब सम्राट् अकबर द्वारा प्रयाग का पुनर्निर्माण इलाहाबाद के रूप में किया जाना प्रारम्भ हुआ, तो आगामी अनेक वर्षों तक संगमतट पर स्थानाभाव के कारण सामूहिक स्नान पर्व आयोजित करना सम्भव नहीं था। फलतः संन्यासियों के सम्यक् निर्णय पर और शासकीय सहायता से यह सामूहिकस्नान अस्थायी रूप से प्रयाग में न होकर पवित्र गंगा के तटवर्त्ती हरिद्वार तीर्थ में आयोजित किया गया। शास्त्रोक्त कुम्भस्थ बृहस्पति और मेषस्थ सूर्य का ग्रहयोग इस

सामूहिकस्नानपर्व के लिए चुना गया। कुम्भस्थ बृहस्पति के दौरान आयोजित होने के कारण यह पर्व 'कुम्भ' पर्व के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह आयोजन बहुत सफल रहा। प्रयाग का निर्माणकार्य अपेक्षित समय से लम्बा खिंचने पर जब हरिद्वार में पुनः कुम्भपर्व आयोजित करना पड़ा तो इस बार पर्व के दौरान आर्थिक गतिविधियाँ बहुत बढ़ गयीं और इसने एक 'मेला' का रूप धारण कर लिया। निर्माणकार्य पूरा होने पर जब सामूहिकस्नानपर्व प्रयाग (अब इलाहाबाद) वापस आया, तो यहाँ भी धीरे–धीरे स्नानपर्व आर्थिक गतिविधियों को अपने में समाविष्ट करते हुए 'मेले' में रूपान्तरित हो गया और कालान्तर में हरिद्वार के कुम्भ मेले से साम्य के आधार पर 'कुम्भमेला' कहलाने लगा। लेकिन इसका अन्तराल अभी भी पाँच वर्ष का ही रहा।

80. इलाहाबाद के इसी सामूहिकस्नान पर्व का निकोलाई मनूची ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया। वर्ष 1801 ई. में अंग्रेज़ों ने इलाहाबाद को अपने अधिकार में लिया और फिर जब 1830 ई. के आसपास ईसाई धर्मप्रचारकों की गतिविधियाँ यहाँ बढ़ीं, तो उनके द्वारा इस मेले का नियमित उल्लेख अपने लेखों में किया गया। अभी तक प्रकाश में आये अभिलेखों में इलाहाबाद के 'कुम्भ' मेले का साभिधान प्रथम विस्तृत वर्णन हमें ईसाई मिशनरी रेवरेण्ड जोसेफ़ वारेन की पुस्तक में मिलता है, जो वर्ष 1847 ई. के कुम्भ मेले के दौरान इलाहाबाद में ही थे। 'द्वादशवार्षिक' मेले का विवरण हमें बैपटिस्ट चर्च के मिशनरी रेव. जॉन लॉरेंस के लेख (1835 ई.) में मिलता है, जिन्होंने 1835 ई. के द्वादशवार्षिक मेले में इलाहाबाद शहर में धर्मप्रचार कार्य किया था। जबकि षाड्वार्षिक मेले का सर्वप्रथम उल्लेख 'कलकत्ता मन्थली जर्नल' के 03.02.1823 के अंक में मिलता है, जहाँ उनके इलाहाबाद के रिपोर्टर ने इस मेले के शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न होने की सूचना दी थी।

81. इस प्रकार प्रयाग का वर्तमान कुम्भ मेला प्राचीन महादानपर्व का ही परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप है, जो मूलतः हर छठें वर्ष आयोजित होता था।